की तरह उतारने हों। जिनके पहुंचते ही कोटि कोटि जनगण के अन्तर मे शाश्वत प्रकाश भर सके।

औरो को प्रकाश वही दिखा सकता है जिसमे स्वयं ही अनन्त प्रकाश का अजस्र श्रोत हो। जो स्वयं मद, छल, छद्म एवं पैंतरेवाजी के पाप से पीडित हो वह न तो स्वयं को ही सच्चा पथ दिखा सकता है न औरों को ही प्रकाश के पथ पर ला सकता है। अतएव अन्तर के कलुष से मुक्ति पाना तो नितांत आवश्यक है। आप अपनी क्षमताओं पर शान्ति से विचार करो -आप पाएगे कि आप में अनेकों ऐसी सुप्त शक्तियाँ छिपी है जिनका उपयोग करके आप केवल नाम ही नहीं पर्याप्त धन भी अर्जित कर सकते हैं। आप युग की आवश्यकताओं को समझिए तथा उन्ही के अनुरूप रचनायें कीजिए। कष्ट तो होगा, परिश्रम भी करना ही पड़ेगा किन्तु बिना परिश्रम के जीवन का कोई भी कार्य नही हो पाता और यदि परिश्रम करके ही हम अपनी कठिनाइयो दुश्चिताओ से मुक्ति पा सकते हैं तो निश्चिय ही हम अधिकाधिक परिश्रम ही करना चाहेंगे। ऐसा परिश्रम से बचने से लाभ ही क्या, जिससे जीवन ही खतरे में पड जाए। परिश्रम तो सफलता एवं समृद्धि की नीव का ठोस आधार है। बुद्धि से भी काम लिया जा सकता है कुछ कामों की ऐजेन्सी ली जा सकती है, कुछ काम स्वयं किये जा सकते हैं। इस बात की चिंता ही क्या है कि कौन क्या कहता है चिन्ता तो इस बात की है कि आप करते क्या हैं?

अपनी आय के स्रोत बढाइये तथा व्यय पर अंकुश लगाइये। खर्च को टालिये तथा उधारी की आदत को मत पालिये। आदमी जब माल उधार लेने लगता है तो उसे अपनी सही स्थिति का ज्ञान नहीं हो पाता। जब हाथ मे पैसा नही होता तथा आवश्यकतायें बढ़ती जाती है तो कैसी निरीह स्थिति हो जाती है मन की। तो आवश्यता इस बात की है कि हम अपनी आमदनी एव खर्च पर पूरा पूरा ध्यान रखें। ऐसा

कोई कार्य न करें जिससे हमारा व्यय सीमा को लांघ जाए। मनुष्य चिन्तनशील प्राणी है।मनन करके अपने जीवन को निर्माण करना होगा और उसे कर्मठ तथा उपयोगी बनाना ही होगा। जिससे आप समाज का उपकार कर सकें। राष्ट्र का उद्धार कर सकें। तथा अनेक व्याधियो पीड़ित आत्माओ को मुक्ति दिला सके।

विकृतियों से मुक्ति कब होगी

पुराने जमाने मे व्रत, उपवास, उद्यापन, पुरश्चरण जप, तप से साधना की जाती थी—जीवन को साधने के लिये साधना को आधार मानने वाले साधू कहे जाते थे। किन्तु अब तो ऐसा युग आ गया है कि जो सहज सध जाए, वही साधना कहलाता है, लेकिन कोई भी कार्य अपने आप नही हो सकता। सहज सधने का अवसर तो तभी उत्पन्न होगा जब हमारे हृदय मे लक्ष्य के प्रति सच्चा अनुराग हो। अपनी क्षमता का विकास करने के लिये आवश्यक है कि पहले अपनी दुर्बलताओ से पूरी तरह परिचित हुआ जाए। जब तक चौका लगेगा नही, भोजन बनेगा कैसे? जब तक नींव भरोगे नहीं, महल बनेगा कैसे? मन के अन्तराल मे छाये प्रमुप्त जाल जजालो की काई से मुक्ति पाओगे तभी तो स्वच्छ स्फटिक सा मानसहस देख पाओगे। विकृतियो एव विद्रूपताओ को ही जीवन के सर्वोच्च सुखों का आधार मानने से तो काम चल नहीं सकता। कितना विचित्र है हमारा भारत समाज। विचार एव आचार मे, दर्शन एव दृष्टि मे, चिन्तन एव रचना मे, तर्क व कर्म मे कितना विशाल अन्तर है हमारे इस महादेश मे? देखकर आश्चर्य तो होता ही है व्यथा भी होती है।

आत्मा की अमरता मे विश्वास करने वालो! पुनर्जनम एव कर्मफल के सुस्पष्ट सिद्धान्तो मे श्रद्धा रखने वाले आर्य पुत्रो! देह त्याग पर हंस कर अन्त्येष्टि संस्कार कराने वालो! यह भयकर रोना धोना एव विशाल मृत्यु भोज का बचकाना आचार क्यों उपस्थित करते हो?

वैज्ञानिक शिक्षा से परिपूर्ण वैराग्य प्रधान हृदय लेकर भी मृत देह की मृत्तिका से ममता दर्शाकर क्यों रुदन करते हो ? सम्बन्धी न होते हुए भी क्यों श्राद्ध करके पाप करते हो ? क्या स्वजातियों तथा सम्पर्क के अनेकों लोगों को एक दिन भोजन कराने से मृतात्मा को शान्ति मिल जावेगी? क्या उसे उसके कर्मानुसार फल नहीं मिलेगा ? क्या उसका पुनर्जन्म नहीं होगा ? तो व्यर्थ ही क्यों अमर आत्मा को पुनः मृत्यु लोक में घसीटने का यत्न करते हो। यह कहना कि बिना मोसर तो पुरखे राख में लोटते हैं भारतीय दर्शन के ज्ञान से पूर्णतः अपरिचित होना ही है। श्रद्धा-प्रदर्शन एवं नश्वर स्मरण के लिए कोई ऐसा स्थल बनाइए जो युगावतार हो। मूल भावना की रक्षा हो सके। शोक समवेदना व्यक्त करने के नये तरीके निकल चुके हैं। वैज्ञानिक युग में यह युगों पुरानी प्रथा चल नहीं सकती, चलना भी नहीं चाहिए। इसमें आपका व्यय तो होता ही है किन्तु राष्ट्र की कितनी अपार क्षति होती है इसकी तो आप कल्पना कीजिये। इस द्रव्य से आप चाहे तो सारे देश को दो वर्षों में साक्षर बना सकते हैं। हर ग्राम में दवा का प्रबन्ध कर सकते हैं।

इसी प्रकार की हमारी दूसरी परम्परा है विवाहों आदि के अवसर पर दहेज, भड़क और कर्मकाण्डों की अब न तो कन्या को बाहुबल से जीत कर लाने का युग है न उपहरण का, न विशिष्ट शर्तों का पालन कर स्वयंवर करने का ही तो फिर सेना की तरह बराती लेकर तोरण मारने जाने की क्या आवश्यकता है ? वर कन्या के माता पिता ही जिस स्थान पर विवाह होना है, वहां के पंचों को एकत्रित कर विवाह- संस्कार क्यों नहीं सम्पन्न कर सकते ? सच तो यह है कि यदि हम सचमुच वैदिक संस्कृति मे विश्वास करते हैं तो अग्नि के समक्ष की गई प्रतिज्ञा सबसे बड़ा प्रमाण है। अग्नि की ज्वालाओ के समक्ष सात कदम साथ साथ चल कर क्या हम दो आत्माओं को जन्म जन्म के लिये परस्पर धर्म-कर्म का सहयोगी नहीं बना सकते ? मंत्र तो विवेक शक्ति के प्रतीक हैं किन्तु हमारा आचरण है, रूढ़ियों के खेल जैसा। यज्ञोपवीत या विद्या-अध्ययन

संस्कार तो धीरे धीरे उठता जा रहा है तथा विवाह संस्कार पर व्यर्थ ही धन धूल की तरह बहाया जा रहा है। उस पर भी कोढ़ मे खाज उत्पन्न करने वाली बात यह है कि कहीं बाल विवाह तो कहीं वृद्ध विवाह, कहीं कन्या विक्रय तो कहीं वर विक्रय, तो कहीं मानता दहीचा आदि प्रथाओ के रूप मे नारी विक्रय, प्रत्येक प्राणी में समान आत्मा मानने वाली आर्यों की सन्तानो, किसी भी आत्मा को देह मान कर इस तरह भेड बकरियो की तरह बेचने का आप को क्या अधिकार है ?

विकृतियो से भरे इस सामाजिक जीवन मे उत्कृष्टताओ का शुभ मुहूर्त कब होगा ?

———

प्रकाश पुंज भारत

सूरज पूर्व से उदय होता है, विश्व को प्रकाश पूर्व से ही मिलेगा। आश्चर्य तो तब होता है जब कुछ कथित विद्वान पश्चिम मे प्रकाश पाने की आशा करने लगते हैं तथा अपने आचार विचार पाश्चात्य पद्धति पर ढालने के अखाड़े खोलते हैं। पश्चिम दिशा से जैसे सुर्योदय असम्भव है उसी प्रकार पश्चिमी देशों से प्रवीन ज्ञान विज्ञान का मौलिक उदय होना भी कठिन है। जिस तरह चन्द्रमा चमकता है प्रकाश करता है वैसे ही वे भी चमक सकते हैं किन्तु पराए प्रकाश से ही। विकास तो अन्दर से ही होता है। जब तक आत्मा में प्रकाश नही बाहर प्रकाश कहां से आयेगा। जब तक मन मे शान्ति नहीं घर मे शान्ति कहां से आयेगी ? जब तक घर मे शान्ति नही बाहर शान्ति कहां से आयेगी ? हर मिनिट में 10 तलाक 5 आत्महत्या व 15 मानसिक रोगी बनाने वाला अमेरिका हमें कहाँ तक प्रकाश दे सकता है। वह पहले अपने घर मे ही तो शान्ति स्थापित कर ले। हर 3 से 5 वर्ष मे राज्य शासन के अधिनायकों की पर्दे के पीछे हत्या करने वाला इस दुनिया को क्या प्रकाश देगा। बनिये की तरह अपनी कूटनीति से दुनिया लूट कर अपना घर भरने वाला ब्रिटेन हमें क्या सिखायेगा अंग्रेजी में ही ज्ञान विज्ञान का कोष मानना अपने आपका अपमान करना है।

प्रकाश की ओर देखो किन्तु अन्धकार की आवश्यकता के निं नहीं ? यदि प्रकाश में भी घाटने तम ही तम पाया तो क्या पाया समतमाते हुए अन्धकार में भी प्रकाश के दर्शन करो-यही तो प्रभात का सन्देश है। घनघोर निविड़ निशा में भी अन्तरंग प्रकाश में अभिभूत होने की आदत का विकास करो। देखना ही है तो सूर्य के अनुपमेय प्रकाश को देखो। कुत्सित कृमि कीटों की सी याचना तरंगों के तम-जाल में क्यों फंसते हो? कामना ही करते हो तो ऐसी करो जिससे अंग प्रत्यंग में नवोन्मेष का संचार हो जाए। जब चारों ओर से पाकिस्तानियों का दल बढ़ता चला आ रहा हो, जब भयंकर आंधियां चल रही हों, भीषण बिजलियां कौंध रही हों, तब क्षण भर के लिये भी विचलित न होने वाले संत जिस देश में हैं, अपने अंतरंग प्रकाश में विश्व को नई दृष्टि देने वाले महात्मा जिस देश में हैं—उस देश से बढ़कर कोई देश नहीं है। सारी दुनिया का आगत अनागत, नूतन पुरातन, स्वाभाव जिनकी दिव्य ज्ञान दृष्टि में समाहित हो जाता है जो प्रकाश के पुंज दिव्य-दिवाकर है—उनके श्री चरणों में बढ़कर अन्धकार का अन्त कहां होगा? भारत स्वर्ग है, भारत भक्त है भारत का अर्थ ही है प्रकाश का पुंज, यह प्रकाश प्रदाता है। दीप्यमान क्षेत्र। इसके खण्ड-खण्ड अगों को अखण्ड करना ही होगा। इनके मग्न हृदयों को जोड़ना ही पड़ेगा। राष्ट्रीय एकता का उद्घोष कर हमें संकट के बादलों को सदा सर्वदा के लिये दूर करना ही पड़ेगा। सहस्त्रों सदियों तक भारत में विश्व-शान्ति के मंत्र गूंजे हैं तथा भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता की समता दुनिया के किसी देश की सभ्यता या संस्कृति नहीं कर सकती। गंगा, यमुना, सरस्वती, ब्रह्मपुत्र, सिन्धु, कावेरी, गोदावरी एवं नर्मदा नदियों से पखारा जाने वाला यह देश क्या पुनः संगठित सुदृढ़ एवं अखण्डित नहीं होगा? क्या हम उपमहाद्वीप के मनस्वी अपने हृदय का सारा अमृत निकल कर घृणा-द्वेष के धूमिल बादलों को हमेशा हमेशा के लिये दफना नहीं देंगे? क्या माँ भारती के अंचल में कोई ऐसा माँ

का लाल पुनः नहीं जन्मेगा जो भारत के दो टुकड़ों को जोड़कर इस महानराष्ट्र को विश्व का सर्वश्रेष्ठ राष्ट्र बना दे। विश्व की 6 प्रमुख शक्तियों में भारत भी एक शक्ति होगा। हमें अपने कार्यों, रीति-नीतियों एवं सिद्धान्तों को इसी परिपेक्ष्य में पुन निर्धारित करना चाहिए तथा हमारी योजनाओं का उद्देश्य होना चाहिए आत्म निर्भरता के साथ साथ अखण्ड भारत का निर्माण। विश्व शान्ति के लिए यह एक सिद्धांत आवश्यक तथ्य है जिसे सभी राजनैतिक दलों को अब एक बार मान ही लेना चाहिए तथा 20 वी सदी के उत्तरार्ध में भाई भाई के बीच महाभारत रचने से बाज आना चाहिये।

शिशु शिक्षा का मर्म

यदि हम अपने कार्य मे रस लेने लगें। यदि हमें हर प्रकार के कार्य मे आनन्द आने लगे, यदि हम प्रसन्नता पूर्वक की हर विपरीत परिस्थिति को गले लगाने के आदी हो जाएं तो समझ लीजिए हमारी आधी समस्यायें हल हो गई। कार्य कितना ही कठिन क्यों न हो, आवेश की आवश्यकता नहीं। सरलता से, सहज मुस्कान के साथ जो कार्य किया जाता है। उसमे जो आनन्द है, खीजकर बेबस से या क्रोधावेश मे किये गये कार्य मे कहां है? शिशु का जन्म प्यार से होता है—शिशु का लालन पालन भी प्यार से ही होता है और शिक्षा दीक्षा भी प्यार से ही होना चाहिये। उसमे खलल क्यों उत्पन्न हो। छड़ी क्यों चलना चाहिये! यदि बालक गलती करता है तो करने दो, वह गलती करके ही सीखेगा। उसे यह अनुभव कराओ कि गलती कहां है तथा क्यों है? जब तक बालक की चिंतन-शक्ति जाग्रत नहीं होती उसकी प्रतिभा का विकास भी हो नहीं सकता। निर्भयता समस्त विद्याओं का मूल मंत्र है। बालक मे तर्क शक्ति का विकास करने के लिए ही गणित का अध्यापन आवश्यक है।

तन्मयता एवं एकाग्रता की वृद्धि के लिये गणित से बढ़कर अन्य कोई विषय नहीं अतएव शिक्षा जगत के मित्रों स मेरा यही निवेदन है

कि कोमल कुसुम जैसे शिशुओं को अपनी क्रूर दृष्टि का शिकार बनाकर, इस दम दण्डों के प्रहारों से भयभीत मत कीजिए। भय से सरलता किन्तु स्नेह से किया गया कार्य ठोस होगा। अनन्त काल तक प्रभाव डालने वाला होगा।

बालक की सहज नैसर्गिक शक्तियों को विकसित करने वाला होगा। वस्तुतः शिक्षा का उद्देश्य भी यही है कि हम बालक की सुप्त नैसर्गिक शक्तियों को जाग्रत कर दें, ताकि वह अपनी रुचि के अनुरूप कार्य का चयन कर सके तथा जीवन में निरंतर सफलताएं प्राप्त करता रहे।

कहते हैं कि माता पिता अपने बच्चों को ठीक ढंग से नहीं पढ़ा सकते किन्तु सच तो यह है कि जितने अच्छे ढंग से बालक को उसके पालक पढ़ा सकते हैं, उतने अच्छे ढंग से और कोई नहीं पढ़ा सकता। हमारी शिक्षा प्रणाली का मुख्य दोष यह है कि बच्चों पर एक साथ बहुत से विषयों का बोझ लाद दिया जाता है। जिसका परिणाम यह होता है कि बालक किसी एक विषय में भी पारंगत नहीं हो पाता। हमें इतना धैर्य तो रखना ही होगा कि हम प्रति दिन केवल दो अंक, दो अक्षर और दो बातें ही बताएं, किन्तु उन्हें इतने सुन्दर ढंग से प्रस्तुत करें कि बालक उस ज्ञान को कभी भी न भूले। जल्दी जल्दी में पाठ्यक्रम पूरा करने की प्रवृत्ति, सभी कुछ बालकों के मस्तिष्क में जल्दी जल्दी ठूसने की प्रवृति तो घातक ही है। न केवल विद्यार्थियों के लिए अपितु अध्यापकों के लिये भी। एक विषय को जब तक कई बार दोहराया न जाए, बालक के मन में उसे ठीक ढंग से बैठाया नहीं जा सकता। इसका कारण यह है कि बालक का मन बड़ा ही चंचल होता है तथा तब तक स्थिर नहीं रहता जब तक सबके सिखाने का ढंग से आकर्षक और रोचक न हो। बालकों को पढ़ाना एक ऐसी कला है जिसमें हर व्यक्ति पारंगत नहीं हो सकता। पंचतन्त्र के रचयिता पं: विष्णु शर्मा की कहानियों को कौन नहीं जानता? बालकों

की कहानियों के माध्यम से रणनीति एवं राजनीति के प्राण सूत्र समझा देना भारत की पुरानी परिपाटी रही है। आज कल शाला मन्दिरों में जो बच्चों के आनन्दमय कोष को तृप्त करने का प्रयत्न किया जाता है तथा भोजन-मनोरंजन के साथ जो शिक्षा दी जाती है, वह भी वास्तव में प्रतिभावान बालकों के निर्माण में सहायक तो होती है, किन्तु मुख्य तत्व शिक्षक की योग्यता एवं शिष्यों के प्रति उसका निष्कपट वात्सल्य है न कि उपकरण। मारने पीटने से बच्चे के हृदय में भय बैठ जाता है तथा शिक्षा के प्रति घृणा उत्पन्न होकर वह शिक्षा के क्षेत्र से भागने के लिए विवश हो जाता है। आवश्यकता इस बात की है कि हम धैर्य से बालकों की मनोदशा के अनुरूप शिक्षा देने की प्रवृत्ति का विकास करें तथा पुराने तरीकों से अपना पिण्ड छुड़ाएं।

रोग का सही निदान करें

यह बात हमें अच्छी तरह से समझ लेना है कि अपने विकास का दायित्व स्वयं हम पर ही है। हमें अपने विकास के लिये प्रकाश भी अपने ही अन्दर से प्राप्त करना होगा। आन्तरिक विकास ही सच्चा विकास है। बाह्य आडंबर में कुछ भी नहीं रखा है। बाहरी सहायता पर निर्भर रह कर कोई भी देश प्रगति के पथ पर निरन्तर अग्रसर नहीं हो सकता। आवश्यकता इस बात की है कि हम अपने आप को समझें, अपनी आवश्यकताओं को समझें, तथा पार्थिव गुलामी से मुक्ति प्राप्त करने की चेष्टा में सतत संलग्न रहें।

सन्यास लेने का अर्थ संसार को त्यागना नहीं है। सन्यास या वैराग्य का सीधा सादा अर्थ यह है कि मनुष्य सांसारिक आकांक्षाओं एवं दुष्प्रवृत्तियों से मुक्ति प्राप्त करें। आलस्य, दीर्घसूत्रता एवं अहंकार से अपने आप को मुक्त करो। जिन वृक्षों पर जो बन्दुक के दानव मंडरा रहे हैं प्राणायाम के पवन से दूर भगा दो। नाम वैरागी और काम रागी' ऐसा अन्तर्विरोध युक्त स्वरूप भारत में ही दृष्टिगोचर होता

है। नाम कमाती और कर्म दिखावटी मन बन रह [illegible] सकता है।

इसे अच्छी तरह से हृदयंगम करना होगा कि हमारे चारित्रिक गुण कौन कौन से है, तथा हम उनसे मुक्ति कैसे पा सकते हैं ? मनुष्य चाहे तो क्या नहीं कर सकता ? मनुष्य अपना मन इन्द्रियों एवं विचारों का स्वामी है। दास नहीं। मनुष्य यदि पुरुषार्थ करे तो वह एक जगह बैठा बैठा ही सारे संसार को जान सकता है पूरे [illegible] में [illegible] से पूज प्रकाशित कर सकता है। किन्तु मनुष्य अपनी अपनी शक्तियों को स्वयं ही क्षीण करता है तथा धीरे धीरे इतना पंगु हो जाता है कि वह अपनी इन्द्रियों, सुख-सुविधा और एवं वासनों का दास बन जाता है।

पर ठान भी स्वयं को कल्पनाओं से भ्रष्ट न करो उनका असर आपके अन्तरमन पर तो पड़ता ही है। पूजा, जप, तप, नियम एवं आचार सभी का एक ही तो उद्देश्य है कि मनुष्य का चित्त अर्थात् अन्तरमन परम पवित्र होकर सद्‌पथ पर अग्रसर हो। यदि अन्तरमन में कुत्सित काम, क्रोध, मद, लोभ, दम्भ के मनोविकार भरे हैं तो हमारा यह सारा बाह्य आडम्बर बिल्कुल बेकार है। मनुष्य यदि अपने जीवन के महान लक्ष्य से भ्रष्ट होकर केवल कर्म-काण्ड में ही उलझा रहे तथा पूजा पाठ को एक बन्धन बना ले तो विनाश ही हुआ समझिये। केवल पूजा के समय चित शुद्ध करो ज्योंही पूजा से उठे, या मन्दिर से बाहर आए या जप ध्यान से फारिग हुए कि वही कुत्सित कामाचार, परनिन्दा, मोह मद, मत्सर के शिकार हो गये तो फिर इन सब साधनों का प्रत्यक्ष असर हुआ ही क्या ? और जब इन तमाम पूजा पाखण्डों का कोई प्रत्यक्ष असर नहीं है तो परोक्ष भी क्या प्रभाव पड़ेगा तथा वह आपका कौन सा लोक परलोक सुधार सकेंगे। महात्मा पातंजली ने इसी लिये योग शास्त्र में गुरु-गर्जना करके कहा है कि "चित्तवृत्तियों का निरोध ही योग है।"

विकारों को जन्म जन्मान्तरों से पालता रहता है। जैसे रात्रि के घनघोर अन्धेरे मे कोई खिड़की खुली रह जाये या कोई द्वार ठीक से बन्द न हो तथा चोर प्रवेश करके चोरी कर जाता है उसी प्रकार से अवचेतन मौका ही देखा करता है। जैसे ही उसे अवसर मिलता है वह आपके चेतन पर सवार हो जाता है तथा आपको वह सब करने के लिए विवश करता है जो शायद आप स्वस्थ्य बुद्धि एवं चेतना की अवस्था मे नही करते। मादक द्रव्यो का सेवन अवचेतन की सत्ता को प्रधान कर देता है। अवचेतन के प्रबल वेग को रोकने के लिए आवश्यक है कि उसकी सारी शक्तियो का उदात्तीकरण करने आकर्षण का केन्द्र साहित्य, कला, या अन्य प्रकाशित क्षणो को बना दिया जाए अतृप्त या दमित कामवासनाएं रोग का कारण हो सकती है, किन्तु भोग मे ही तो उनकी निवृत्ति हो नहा सकती, उससे तो क्षुधा अत्यधिक तीव्रतम ही होती है। तो, आवश्यकता इस बात की है कि चितवृतियों मे से कामांधता एव रोग ग्रस्त भावना से मुक्ति पाकर तेजस्विता का परिचय दिया जाए। रोग का सही निदान कीजिए केवल अस्थाई उपचार से काम नही चल सकता।

घर मे ही वेकुण्ठ

मनुष्य की आकाक्षाऐ अनन्त है, किन्तु उन्हें प्राप्त करने के साधन सीमित हैं। कल्पनाओ एव साधनो का पार नहीं है किन्तु समय बहुत ही कम है। ससार मे इतना अधिक ज्ञान है कि मनुष्य एक जन्म मे भी उस सारे ज्ञान को आत्मसात कर ही नही सकता। अनेको जन्मो तक एक ही प्रकार की योग साधना का क्रम चलता है तब कही जाकर एक महान व्यक्तित्व का निर्माण होता है किन्तु योग साधना मे विघ्न भी पडते रहते हैं। जब ऐसा होता है तो योग भोग मे परिवर्तित हो जाता है तथा पूर्व जन्म के सद सस्कारो मे वृद्धि होने की अपेक्षा कमी होने लगती है। पुराने जमाने मे लोग योग साधना को जीवन का महान लक्ष्य मानते थे आज कल भोग साधना ही जीवन का सर्व श्रेष्ठ लक्ष्य बना हुआ है। अब

जिम्मेदारी हो सकती है, किन्तु यह आत्मिक और उन्मुक्त प्रेम नहीं है। प्रेम तो शुद्ध सात्विक, आध्यात्मिक एवं धार्मिक आनन्द की उपलब्धि का साधन है। प्रेम के बिना जीवन उसी तरह नीरस, निष्प्राण एवं निस्सार है जैसे जल के बिना सरिता या ज्योत्स्ना के बिना चन्द्रमा। प्रेम ही वह कल्पवृक्ष है जिसकी छाया में मनुष्य अपनी मनचाही मुरादें पूरी कर सकता है। मनोकामना एवं मनोवांछा की पूर्ति तथा लक्ष्य सिद्धि के लिए आवश्यक है कि हृदय को इतना उर्वर बनाया जाये कि उसमें प्रेम के बीज सरलता से अंकुरित हो सकें। राष्ट्र प्रेम के पुजारी ही दुनिया का इतिहास रचते हैं। धर्म प्रेम के पागल ही समाज को बदल देते हैं। सच्चे प्रेम के पथिक ही दुनिया को रहने लायक बनाकर धरा पर स्वर्ग का अहसास बना देते हैं। प्रेम के बिना परिवार, समाज, राष्ट्र एवं जीवन बेकार है। प्रेम जीवन-रस को तरोताजा और अजस्र प्रवाह युक्त रखने वाला सुधागार है।

आत्म साक्षात्कार तो कीजिये

वैदिक कवि ने आत्मा को 'सूर्य' का तथा मन' को चन्द्रमा जिसकी कलायें बढ़ती घटती रहती है का सम्बोधन दिया है 'चन्द्रमा मन सो जात चक्षो सूर्यो अजायत'—जब मनुष्य को आत्म बोध हो जाता है तो फिर वह किसी पर निर्भर नहीं रहता। सूर्य की तरह वह सारे संसार का विकास करने को उद्यत रहता है, अपनी समस्त शक्तियों को समन्वित करके वह एक अपूर्व आलोक का अनुभव करता है तथा उसे यह आभास होने लगता है कि वह निरंतर समृद्धि के पथ पर अग्रसर हो रहा है। उसके देह के कण कण मे एक अमृतपूर्ण शक्ति का संचार हो जाता है तथा वह संसार के समस्त दुर्गम एवं असाध्य कार्यों को करने की क्षमता अपने आप मे प्राप्त कर लेता है उसके जीवन मे नियमितता, श्रेष्ठता एवं सात्विकता का संचार हो जाता है। वह किसी की ओर नहीं देखता। सारा संसार उसकी ओर देखने लगता

अनेक जन्मों के संस्कार तथा दस इन्द्रिय एवं एक मन से द्वारा स्वार्थ लेकर जन्म ग्रहण मानव आत्म-साक्षात्कार कैसे कर सकता है ? वह तो विषय वासना की पूर्ति एवं सुख साधनों की प्राप्ति में ही अपने जीवन का सर्वश्रेष्ठ समय लगा देता है। आवश्यकता इस बात की है कि हम संसार में अपने अस्तित्व का मूल प्रयोजन समझें केवल बात बनाने एवं काम टालने से तो काम चल नहीं सकता। सामने आई विपत्ति को भोगने से ही पिण्ड छूटेगा, भागने से नहीं। निद्रा, भय मैथुन, अहम् पशुवत व्यवहार में ही उलझे रहें तो जिस महान पारस पत्थर की खोज हमें करना है वह कहीं से उपलब्ध होगा। हमें हंस की तरह गुण ग्राहक बनना पड़ेगा तथा श्रेय व प्रेय के भेद को अच्छी तरह से समझना होगा। शुभ कार्यों से ही देवत्व की उपलब्धि होती है। ऐश्वर्य प्राप्त कर निरन्तर उत्तमोत्तम कार्य ही करना चाहिए क्योंकि यश उसे ही मिलता है जो सत्कर्म करता है। धर्मविहीन जीवन तो मृतक के समान ही है। जीवित होने का प्रमाण ही यह है कि आत्मा निरन्तर प्रगति करती रहे। प्रकाश की ओर बढ़ती रहे तथा अन्धकार से अपना पिण्ड सदा सदा के लिये छुड़ा ले, न केवल आप अपने बन्धन काट सकेंगे किन्तु औरों के भी पापमुक्त कर सकेंगे। 'अस्तु एक बार आत्म साक्षात्कार करके तो देखिए।

अपशकुन के बिलाड

क्रोध में मनुष्य कहीं का नहीं रहता। क्रोध अन्धकार का प्रतीक है। क्रोध तिमिरावस्था का सूचक है। क्रोध निकृष्टता का स्वरूप है। क्रोध सारी 'श्रेष्ठता' को समाप्त कर देता है। क्रोध कोई वरिष्ठता नहीं रहने देता। क्रोध उत्कृष्टता से पतन का पात है। क्रोध में मानव पशु से भी बदतर हो जाता है। क्रोध भयंकर रोग है जिसकी प्रतिक्रिया स्नायुमण्डल की समस्त गतिविधियों को पंगु बना देती है, क्रोध आदमी

को धंगा कर देना है। उसके अन्तराल में कुछ क्षणों के लिए अमावस्या का प्रवेश हो जाता है तथा वह अपने ही उद्‌गारो विचारो एव विकारों से टकरा कर चूर चूर होने लगता है।

क्रोध पर विजय प्राप्त कर सकना एक महत् उपलब्धि है। क्रोध को पास भी न आने देना महानता का एक लक्षण है। क्रोध से बच पाना हर व्यक्ति के लिए सम्भव नही है तथापि प्रयत्न तो हर एक को करना ही चाहिए। क्रोध मे वर्बरता एव क्रूरता के कीटाणु पलते हैं। क्रोधोन्मत्त क्या नही कर सकता। अपरोक्ष अहित सोचते सोचते वह स्वयं का भी विनाश करने को उतारू हो जाता है। क्रोध की अवस्था एक प्रकार से विक्षिप्तावस्था है। बुद्धिमता का प्रमाण यह है कि आप क्रोध का पी जाएँ। कहते हैं जो कम खाता है तथा गम खाता है, वह अधिक जीता है। गम खाने का मतलब क्रोध को दूर भगाता है। मनुष्य क्यो मनोविकारो का दास बन जाता है? क्यों वह अपने शुद्ध स्वरूप से अपरिचित रहता है? क्यो वह पाशविक वृत्तियो के जाल मे इस तरह उलझ जाता है कि आप को पहचान नहीं पाता। आखिर क्या वजह है कि मनुष्य जान बूझ कर अपराध करता है। अन्दर से आवाज़ आती है कि यह ठीक नहीं है इस से बचो - किन्तु फिर भी मन है कि इन्द्रियो के विषयो की तृप्ति हेतु अशुद्ध आचरण की ओर ही प्रवृत्त होता है? ऐसा क्यो होता है? क्या आत्मा मन की शक्ति से दुर्बल है। क्या आत्मा देह बुद्धि एवं अहंकार के अधीन है? क्या आत्मा पराधीन है? क्या कारण है कि शुद्ध बुद्ध आत्मा जो असीम शक्तिशाली है बन्धन स्वीकार करती है—न चाहते हुए भी बन्धन स्वीकार करने को बाध्य होती है? गीता मे लिखा है कि आत्मा स्वयं का उद्धार या पतन करती है तो प्रश्न यह है कि आत्मा को अपना पतन रुचिकर कैसे हो सकता है? यदि कर्म फल से कोई बचा नही सकता, पूर्व जन्म के संस्कार जब जैसा प्रभाव मानस पर डालते हैं, वैसा ही संयोग बनता है तो आत्मा की प्रबलता कहा रही? आत्मज्ञान क्यो मुट्ठी भर लोगो को ही होता है? हर व्यक्ति को आत्म साक्षात्कार

क्यों नहीं होता ? हर व्यक्ति क्यों आत्मा के प्रकाश में विकास का पथ प्रशस्त नहीं करता । आत्म दर्शन के लिये साधना की आवश्यकता क्यों है ? जब हर प्राणी यह जानता है कि अच्छा क्या है, बुरा क्या है, हितकर क्या है अहितकर क्या है'—तो फिर उसे स्वभाविक रूप से असद् को त्यागकर सत् पर चलने की प्रेरणा क्यों नहीं मिलती ? जब तक काम, क्रोध, मद, मोह, मत्सर एवं लोभ रूपी षट् विकारों से मुक्ति नहीं मिलती—मन रूपी दर्पण पर छाई धूल नहीं हटती—आत्मा के दर्शन सम्भव ही नहीं हैं। सत् चिदानन्द आत्मा के दर्शन सत्य की उपलब्धि के प्रकाशपूर्ण आनन्द लोक में ही हो सकते हैं। बिना सच्चे यत्न के उस शाश्वत प्रकाश से परिचय कैसे हो सकता है, जिससे सारा विश्व प्रकाश प्राप्त करता है' तमोगुण के तिमिर से मुक्ति प्राप्त कीजिए। अहं के अंधकार को विश्वात्मा की ज्योति से प्रकाशित कीजिए ! गर्व की तमिस्रा को दूर भगाइए । मानस लोक में श्रेष्ठता को प्रतिष्ठित करना हो तो सद् गुणी प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन देना ही होगा तभी तो रजस् और तमस् की भ्रान्त विधियों से मुक्त हो सकोगे । जीवन का हर क्षण शुभ मुहूर्त का क्षण है। काम, क्रोध एवं लोभ के बिलाड ही अपशकुन हैं। जो इन से बच सकता है उसके लिये कोई भी कार्य असम्भव की सीमा में नहीं आता ।

———

अपने आप को परखो

यदि आपको ही आपके अपने कर्म से प्यार नहीं, यदि आप ही अपने काम के लिए दृढ़ लगन एवं कठिन परिश्रम के साथ जुटने के लिए उद्यत नहीं हैं। यदि आप ही अपने स्वप्नों को साकार करने के लिए जोखिम उठाने को तैयार नहीं तो कोई आप में भला क्या रुचि लेना चाहेगा ?

आपको जो कुछ भी करना है उसके लिए आप को स्वयं ही प्रयत्न

कठिन दिखाई दे रहा है वही कल

अत्यन्त सरल या छोटा लगेगा। कोई भी काम न इतना छोटा है कि उस की उपेक्षा की जा सके और न इतना बड़ा ही कि भय से उसका परित्याग ही कर दिया जाए। छोटे से छोटे कार्य में भी रुचि-पूर्वक जो संलग्न हो सकता है वही तो अन्ततः महान कार्यों का संपादन कर पाने में समर्थ होता है।

एकाएक कोई दुर्घटना हो जाए तथा पैर में लग जाय या किसी अंग में विशेष की हड्डी टूट जाय तो चिंतित हो कर प्रलाप करने से क्या होगा? उपचार के लिए ऐसी अवस्था में मरहम पट्टी करवाने से ही तो आरोग्य की प्राप्ति होगी धीरे धीरे घाव भर जायेगा तथा पैर ठीक हो जायेगा। जब मनुष्य के शरीर पर इस प्रकार की चोट सहन की जा सकती है तो फिर कीमती कपड़ा फट जाने या मकान की दीवार गिर जाने की इतनी अधिक व्यथा की चिंता क्यों की जाए?

हाथ पर हाथ रख कर बैठने से तो कोई काम नहीं होता। यदि जीवन में कुछ करना है तो अपने आप को संघर्ष की ज्वाला में तपाना ही होगा। सारे कर्तव्यों का पूर्णतय. पालन करते हुए भी तन, मन एवं प्राण को इस तरह सबल बनाना ही होगा कि समय आने पर वह हर प्रकार का वज्रपात सहन कर सके। केवल प्रदर्शन से ही कुछ नहीं होता। हमें तो ऐसे लोग चाहिए जो अपने ही खून से संकल्प पत्रों पर हस्ताक्षर करें तथा मातृभूमि के लिये तन, मन, धन अर्थात् सर्वस्व न्योछावर करने के लिए उद्यत, सन्नद्ध हो। सुख भोग की ओर ललचाई दृष्टि से देखने वाले कीट-पतंगों की तो इस संसार में कमी है नहीं, किन्तु सचमुच राष्ट्र-दीप पर न्योछावर हो जाने को आतुर कितने नव जवान अब इस राष्ट्र में शेष रह गये हैं? यदि केवल बाहरी शत्रु का ही सामना करना हो तो फौज कर सकती है किन्तु जब घर के भीतर ही भीतर शत्रुओं का जाल बिछा हो तो यह आवश्यक हो जाता है कि कुछ युवक ऐसे निकलें जो किसी भी प्रकार के प्रलोभन से विचलित न हो सकें। मैं उन लोगों में विश्वास नहीं करता जो कहते हैं कि दुर्बलता मानव का स्वाभाव है, तथा परिपूर्णता केवल स्वप्निल आदर्श है मैं तो यह मानता हूं कि यदि मानव

आत्मा की आवाज

जीवन का मर्म

जीवन न तो नष्ट करने के लिए ही है और न भ्रष्ट करने के लिए। मनुष्य संसार में इस लिए आया है कि वह आत्म-निर्भर बने तथा वह स्वयं कुछ कर सके जो देवताओं के लिए भी सम्भव नहीं है। मनुष्य न तो नौकरी के चक्र में फंस कर आर्थिक-कारागार में बन्द रहने के लिए आया है, न अर्थ का गुलाम बनकर अनर्थ की साधना करने के लिए ही। मानव को अपना काम ऐसा चुनना चाहिए जिसके द्वारा वह

अपनी सभी आन्तरिक शक्तियों का विकास कर सके। ऐसा कार्य जिससे मनुष्य की अंतरंग शक्तियां कुंठित हो जाएं लाख रुपये मिलने पर भी नहीं अपनाना चाहिये। चाहे नौकरी हो, चाहे व्यापार अथवा कृषि, सभी व्यवसायों का उद्देश्य यह है कि मनुष्य आर्थिक दृष्टि से आत्म निर्भर हो जाए। उसे अपने उदर पोषण के लिए किसी के आगे हाथ न पसारना पड़े। लोकोपकार, राष्ट्र-सेवा या समाज-सेवा सही ढंग से तभी हो सकती है जब मनुष्य आर्थिक चिन्ताओं से मुक्त हो। उसका खुद का व्यवसाय ऐसा हो जो उसे आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये पर्याप्त द्रव्य प्रदान करता हो। उसे उदर पोषण के लिये गलत सलत कार्य करने पर विवश होना पड़े। आज हम देखते हैं कि नौकर-वर्ग काम तो कम करता है और दिन पूरे करके वेतन पाने या भत्ता भुनाने की चिन्ता में ज्यादा रहता है। नेता वर्ग में भी कई ऐसे पाए गए हैं कि जो काम कम करते हैं किन्तु भत्ता का झूठा हिसाब बनाकर पैसा कमाने की चिन्ता में ही अपने सारे व्यक्तित्व का सर्वनाश कर लेते हैं। यह जीवन को भ्रष्ट करना है। वस्तुतः इस काम के लिये मनुष्य संसार में नहीं आया है। कष्ट उठाकर भी इष्ट की प्राप्ति करना ही चाहिए किन्तु इष्ट का सदैव श्रेष्ठ एवं लोकहितकारी होना आवश्यक है। निकृष्ट या स्वार्थपूर्ण इष्ट तो व्यक्तित्व का विनाश ही कर देता है।

जीवन की तीन स्थितियों, तीनों अवस्थाओं—शैशव, यौवन, वृद्धावस्था में पृथक पृथक परिस्थितियां होती है—प्रारम्भ में विकास, फिर विलास और अन्त में विनाश। उत्तम पुरुष वह है जो विनाश के पूर्व ही जीवन कर्म ऐसा बना ले कि वह निरन्तर विकसित होता रहे, वह व्यक्ति बुद्धिमान कहा जाता है जो विनाश के पथ पर कदम पड़ते ही सतर्क होकर अपना पथ परिवर्तित कर लेता है। भविष्य की चिन्ताओं में अभी से क्यों घुले जा रहे हो? चाहे जैसी भी परिस्थिति हो मनुष्य को टक्कर लेने के लिए सदैव उद्यत रहना चाहिए। जीवन का एक क्षण भी व्यर्थ के कार्यों में नष्ट करना अपने आप को भ्रष्ट करना होता है।

—आत्मा की आवाज

प्रति क्षण हमारे मानस में स्वर्णिम भविष्य की भव्य कल्पना होना ही चाहिए। हमें राग व मित्र का भेद तो समझना ही पड़ेगा। आगे बढ़ने तथा निरन्तर उन्नति करने के लिए यह आवश्यक है कि हम जीवन में श्रेष्ठता और निरन्तर श्रेष्ठता, सौन्दर्य और सर्वोत्तम सौन्दर्य का समावेश करें। मन की शक्ति अपार है।

मन की शक्ति से बड़े से बड़े रोग का उपचार कर सकते हैं। लोगों के मन की बातों को जान सकते हैं। लोगों को सद्परामर्श देकर उन्हें सद्मार्ग पर ला सकते हैं। मन को सदाचारी बनाना आज के युग का सर्वोत्कृष्ट धर्म है। आज 100 में से 90 व्यक्ति मानसिक रूप से व्यभिचारी हैं, सच तो यह है कि अन्तःकरण का सदाचारी होना ही सच्चा सदाचार है। आवश्यकता इस बात की है कि हम अपने आपको इतना दृढ़ बनाएं कि विपरीत परिस्थितियों में भी सफलता हमारे चरण चूमे। यह होना तभी सम्भव है जब हम मन, वचन, कर्म से एक से बन कर निरन्तर विकास का पथ खोजते रहें। काम टालना या व्यर्थ समय को नष्ट करना अपने आप को ही नष्ट करना है। बिना महत्त्वाकांक्षा के योजना कैसे बन सकती है और योजना तो सिद्धी की साधना है। बिना किसी योजना के जीवन को जीते जाना तो अनिश्चय की एक ऐसी स्थिति है जिसका अन्त है असीम अन्धकार और अविभ ज्य नैराश्य।

मौलिकता बनाम महानता

दुनिया में आगे बढ़ने का एकमात्र निष्कंटक मार्ग यह है कि जहाँ तक सम्भव हो सके किसी का कभी अहसान सिर पर न लो वरन् हो सके तो निरन्तर दूसरों पर उपकार ही करते रहो। सबसे बड़ी बात तो यह है कि यदि आप अपने आपको सदैव स्वस्थ रखना चाहते हो तो केवल समय भोजन के अलावा दिन या रात में चाय, मिठाई, नमकीन पान आदि कुछ भी न करो। जहां तक निभे किसी के घर का अन्न न खाओ। अपनी ही कमाई का व अपने ही घर का खाओ। यदि

कहीं किसी जगह रहना ही पडे तो अपने ही घर से भोजन बना करते
जाओ। हर जगह और हर एक के यहा खाने वाले की बुद्धि निम्न हो
रहती - मह अपनी मौलिकता को खो देता है—उसकी प्रतिभा मन्द होने
लगती है—वह निर्भर होकर शनै शनैः सामान्य प्राणी बनने लगता
है। मनुष्य यदि एक दो दिन भोजन न करे तो उसके प्राण नही निकलते।
अनेकों भारतवासी तो लगातार कई दिनो के व्रत-उपवास भी करते हैं।
जब आपको यह सम्भव प्रतीत हो रहा हो कि घन्टे दो घन्टे मे आते
घर पहुंच ही रहे हैं तो केवल खाने के लिये मत रुको। समय नष्ट मत
करो, जो व्यक्ति जिव्हा पर सयम रखता है उसके वश में सारा ससार
हो जाता है। जो व्यक्ति जिव्हा एव जननेन्द्रिय दोनो पर संयम रखता
है उसका वर्चस्व पूरे ब्रह्मांड मे छा जाता है।

संयम, त्याग एवं सेवा ही तो मनुष्यत्व के आभूषण है। चिन्तन-शक्ति
के विविध सूत्रो से परिचय प्राप्त करने के लिए आवश्यक है कि जीवन
के हर कार्य को बहुत ही सोच समझ कर किया जाए। हर व्यक्ति की
हां मे हां मिलाने वालो का तथा 'जैसी बहे बयार पीठ पुनि वैसी ही दीजे',
में विश्वास करने वाले का स्वतन्त्र व्यक्तित्व कहा रह पाता है? व्रत या
संकल्प पर दृढता से जमे रहना ही मस्तिष्क की परिपक्वता का प्रतीक
है। हर कदम पर कसम तोडने वाले को पशु चाहे कहा जा सके मानव
तो नही कहा जा सकता। मन की तरगो पर मचल मचल कर स्वय के
स्वरूप को भुला देने वाला मानव मानव नही होता, मनुष्य तो वह है जो
अपने लक्ष्य के अनुरूप मन को साध ले। मन, इन्द्रिया एवं शरीर तो
साधन हैं लक्ष्य प्राप्ति के, साध्य नही हैं जीवन के।

आज के मानव में दृढता का अभाव सर्वत्र दृष्टि गोचर हो रहा
है जैसे तैसे अपना काम बना लेना, चाहे सिद्धान्तो की हत्या हो या
व्रत संकल्प टूटे, यह प्रवृत्ति ही सर्वत्र व्याप्त है। मूलतः आज मानव
टूटता जा रहा है। वह सोचता कुछ है, करता कुछ और है तथा करता
... रहा है। ऐसी भयानक स्थिति हमारे जीवन। ... है—
। की आधार

जो [illegible] नहीं जानते, वे ही इस [illegible] । [illegible] है। [illegible] शब्दों [illegible] ही [illegible] है [illegible] काम विशेष में [illegible] है। जब [illegible] मन में प्रेम होता है तो [illegible] के [illegible] भी [illegible] हैं और [illegible] में भी [illegible] लगते हैं। [illegible] के लिए, [illegible] के लिए जीवन [illegible] और [illegible] है उन्हें तो हर एक [illegible] का ही सहारा लेना पड़ता है।

चाहे आधुनिक शिक्षा में स्नातक, स्नातकोत्तर, डिप्लोमा एवं मनन को पर्याप्त स्थान न हो, चाहे इन कार्यों से किसी परीक्षा विशेष के उत्तीर्ण करने में निश्चित ही सहायता न मिले तथापि इनका महत्व कम नहीं है पर जो शाश्वत सत्य है। सारे जीवन भर पढ़कर भी हमारे स्नातक जीवन-दान या संजीवनी विद्या या जीने की कला से सर्वथा अपरिचित ही रहते हैं। धर्म-शिक्षा एवं चरित्र-निर्माण के अभाव में सारी की सारी पढ़ाई व्यर्थ हो जाने का अंदेशा है। जीवन में धर्म को करने का तात्पर्य ही यही है कि हम अपने आप को आत्मा समझें जो न कभी मरती है न जन्मती है, जो अजर, शाश्वत एवं पुरातन है-अपनी आत्म शक्ति की पहचान पर सर्वोत्तम का कोई असीमित सामर्थ्य अपने वश में नहीं कर सकती। आपके अन्तर में सत् चित् एवं आनन्द से परिपूर्ण सच्चिदानन्द प्रभो विराजमान हैं आप अपने जीवन को जरा संयम सेवा, सदाचार एवं सच्चाई से सजिए तो सही-आप अपने दुर्गुणों की धूल के जरा बुहारी से दूर हटाइए तो सही, आपको आपका अन्तर ही दर्पण सम स्वच्छ निर्मल एवं पवित्र दिखाई देगा और उसमें आप पाएंगे एक परम पराक्रमी, महान शक्तिशाली, विश्व-विजेता, प्रतिभा सम्पन्न पुरुष एक महापुरुष।

दृष्टिकोण का बदलना होगा

एक बार जाग जाने पर पुनः सोने का प्रयत्न न कीजिए। एक बार आगे बढ़ चलने पर पीछे कदम हटाना कायरता है। अपने जीवन के लक्ष्यों को स्पष्ट रूप से मानस में अंकित कीजिए तथा जिन संकल्पों के आधार पर अब तक आगे बढ़ते रहे हैं, उन्हें कभी भी मत छोड़िये। छोटे छोटे संकल्प कीजिए तथा आजन्म उन्हें निभाये।

जीवन में स्वर्ग उतारने वाले साधक का यह प्रयत्न होना चाहिए कि वह अपनी छोटी से छोटी त्रुटि को भी सहन न करे। स्वच्छ मंदिर में किसी भी तरह के कूड़े कर्कट को कैसे पड़ा रहने दिया जाए? निर्मल स्वच्छ स्फटिक शिला पर कालिमा का किंचित भी दाग कितना भद्दा लगता है? केवल यह जानने और बाकने से ही तो कुछ नहीं होता कि काम क्रोध एवं लोभ नर्क के तीन बड़े द्वार हैं। केवल यह घोषणा करने से ही तो कुछ नहीं होता कि अहंकार, मोह एवं ममत्व भयंकर क्लेश के कारण हैं। ईर्ष्या, द्वेष एवं परनिन्दा विग्रह एवं पतन के पथ है। इन सारे तत्वों की जानकारी का अर्थ नहीं है कि जीवन में इन से बचा ही न जाए? नेत्रों का सदुपयोग सद्ग्रन्थों के अध्ययन करने में है न कि रमणियों की लचकती अदाओं एवं फुदकती लटों की ओर वासनाभरी दृष्टि से देखने में। जिव्हा का उपयोग मृदु मनोहर उद्बोधक प्रेरणादायी शब्दों का उच्चरण करने में है न कि किसी की निन्दा करने में। कानों का उपयोग उत्तम वाद्य,संगीत एवं उपदेश सुनने में है न कि किसी की निन्दा या त्रुटियों का बखान सुनने में। यदि आपको संसार में सुख पूर्वक दीर्घायु के आनन्द को लूटना है तो कृपया भला कीजिये तथा भले बनिए। प्रतिज्ञा कीजिए कि मैं अपने नेत्र, श्रवण, एवं जिव्हा का दुरुपयोग नहीं करूंगा इन महान शक्तियों से सदैव उत्तमोत्तम कार्य ही लूंगा। अभाव, तृष्णा, अतृप्ति, एवं क्षुधा पूर्ण लालसा के स्थान पर सन्तोष, सेवा, पूर्णता एवं क्षमता का दृष्टिकोण अपना लेने या पाने की बजाय देने का आनन्द लीजिए। मन के दास बनने की बजाय मन

क्रमशः पे ——

के स्वामी बनिए तथा एक क्षण-को भी व्यर्थ के प्रेम जाल में फंस कर नष्ट मत कीजिए।

शुद्ध विचार महानता का सर्वोत्तम साधन हैं। एक भी तुच्छ विचार या वासना की लघुतम चिनगारी तक हजारों वर्षों की योजना तथा जीवन भर की तपस्याओं में चूर चूर कर सकती है। सच तो यह है कि संसार में मनुष्य का न कोई मित्र है न कोई शत्रु, शुद्ध एवं सद्विचार ही परम-सत् एवं मित्र तथा असद् विचार या पाप की असम्भव कल्पनाएँ एवं कुत्सित भावनाएँ ही धारा के आत्मविकास में सर्वाधिक अवरोधकारक शत्रु हैं। कई वर्षों के कड़े परिश्रम एवं अमित धनराशि के सचय से निर्मित भव्य भवन को जिस प्रकार एक क्षण में एक छोटी सी चिनगारी भस्मीभूत कर सकती है, उसी तरह आपके मानस की सात्विक वृत्तियों, समस्त शक्तियों, प्राणशक्ति एवं कृतित्व शक्ति को एक कल्पित कुविचार की सूक्ष्म निर्धूम अग्निशिखा भी स्वाहा कर सकती है, तभी तो उसमें असीम शक्ति का संचार होता है-वह असम्भव को सम्भव कर दिखाता है-आवश्यकता केवल इस बात की है कि वह अपने दृष्टिकोण को बदले तथा व्यर्थ की क्षणभंगुर वस्तुओं से पिंड छुड़ाकर स्थायी एवं शाश्वत सुख के मोतों का पता लगाने में जुट जाए।

आपमें अपार मानसिक शक्ति का विशाल भण्डार संचित है। एक ही बैठक में महान चमत्कारिक ढंग ठोस पुस्तक लिख देना, अनन्त ग्रंथों का उद्धरण धड़ाधड़ प्रस्तुत कर देना, जाने अनजाने विषयों पर धारा प्रवाह बोलते रहना सभी कुछ मानसिक शक्ति के ही चमत्कार हैं। और तो और लोगों के मन की बातें जान लेना, गुप्त रहस्यों से परिचित हो जाना तथा असम्भव को सम्भव बना देना-यह मनीषियों के ही तो काम हैं। आवश्यकता इस बात की है कि हम अपने मन प्राण को जागृत कर आत्मा के कपाटों पर दस्तकें दें तथा अपने महान स्वरूप को पहचानें फिर तो अपना दृष्टिकोण बदलिये आपको यत्र, तत्र, सर्वत्र, सारा वातावरण विहंसता हुआ, मुस्कराता हुआ तथा स्वर्ण पुंजों की वर्षा करता हुआ प्रतीत होगा। सुख का सागर आपके मानस में हिलोरें मार रहा है।

अ त ।गों टर टर की ठोकरें खाते हैं-आप अपनी शक्तियों को सही दिशा में मोड़िये तो सही।

आत्म दर्शन

प्रत्येक आगत को हरि का रूप समझ यथा शक्ति, अधरो पर मुस्कान सहजे स्वागत करना चाहिए। किसी भी प्राणी को हेय समझना ईश्वर की सृष्टि का अपमान करना है। किसी का भर्त्सना करना अपने आपको उलहना देना है। ईश्वर ने दो आखें दी है देखिए, दो कान दिए हैं, सुनिए—दो नासिका रन्ध्र है सूंघीए—हजारों स्नायुओं से युक्त, मस्तिष्क दिया है—सोचिये। जब बत्तीस दांतों के बीच मे अवस्थित जिव्हा का उपयोग कीजिए सम्हलकर बोलिए—मीठा बोलिये मृदुल एवं मनोहारी शब्दो का प्रयोग कीजिए। कटु एवं कर्कश शब्द न केवल मन मे अशान्ति पैदा करते हैं, अपितु वातावरण मे भी उत्तेजना ही पैदा करते हैं। संसार तो एक दर्पण की भांति है। जैसा व्यवहार हम औरो से करते हैं वैसा ही हम भी तो औरो से पाते हैं - यदि हम ससार की उपेक्षा करेंगे तो हमे भी अपनी उपेक्षा ही मिलेगी—हम यदि मुस्कराकर विहंसते विहग की भान्ति ससार का स्वागत करेंगे तो संसार भी हमारा स्वागत करेगा—यदि हम उपहास करेंगे तो हमें उपहास का पात्र भी बनना होगा। किसी पर हम चिढ़ेंगे तो हम पर भी कोई चिढ़ता ही प्रतीत होगा। संसार की विषमताओं का कोरा रुदन करने का तात्पर्य केवल रुदन को ही निमन्त्रण देना है, किन्तु रोने वालों का कोई साथ नहीं देता अतएव सदैव प्रसन्न रहकर ही सासारिक झंझटो एवं संकटो का सामना करना चाहिए।

मानव को संसृति मे प्राप्त सबसे बड़ा गुण मनन है, चिंतन है अतएव जो कुछ भी कार्य किया जाए सोच विचार कर एवं अत्यन्त गम्भीरता के साथ किया जाए। केवल एक ही दृष्टि से मात किसी भी

रहस्य का पार नहीं पा सकते—जब तक गहरे पानी में नहीं उतरेंगे मानस हंस को मुक्ताएं कहाँ से मिलेंगी? बाहर से सुन्दर दिखने वाला रूप सौन्दर्यमय मन अन्दर से कितना कोमल है, जब तक धर्म और लज्जा के आवरण को उठाकर आर पार न देखा जाए, इसकी कल्पना कैसे सम्भव हो सकती है! बरसाती उमरा (कंडा) बाहर से ठोस, सुन्दर एवं मखमल दृष्टिगोचर होता है, किन्तु उठाते ही अन्दर अगणित कीड़े बिलबिलाते दृष्टिगोचर होने लगते हैं। अतएव किसी भी वस्तु के बाह्य स्वरूप से तो यह नहीं कहा जा सकता कि यह सर्वोत्तम एवं श्रेष्ठ ही होगी। मृग मरु की चमकती धूप को जलाशय चाहे समझ ले किन्तु मानव ऐसा भ्रम कैसे पाल सकता है—उसे तो ईश्वर ने सोचने, समझने अर्थात सोचकर समझने की शक्ति दी है।

आप जिस परिवार, जाति, समाज का संसार को आपका हितैषी माने बैठे हैं, जरा गम्भीरता से विचार करके भी तो देखिये—इस युग में एक भी व्यक्ति आपको विश्वसनीय नहीं मिलेगा—बड़े गर्व से कहेंगे 'सुर नर मुनि सब की यही रीति, स्वारथ लाग करें सब प्रीति', मानो बिना स्वार्थ के प्रेम करना अब युग धर्म ही नहीं रहा। जो कुछ करना चाहते हो करो। आपको कौन रोक सकता है—धर्म के पुनीत पथ से—शनैः शनैः शान्ति से कार्य करते जाइए। व्यर्थ ढोल बजाकर औरों पर अपने इरादों को व्यक्त मत करो—काम अपने आप आपका इरादा व्यक्त करेगा। अपने कार्य का निरीक्षण बार बार करो तथा स्वयं ही अपने आप में सुधार करो। ऐसा न हो कि और लोग तो आपके दुर्गुणों को देखकर राई का पहाड़ बनादें, और तुम अपने ही नाक के नीचे की बुराई न देख सको। कोई कहे तब सुधार करने की अपेक्षा अपनी अन्तप्रेरणा से सुधार करना ही स्वभाविक एवं शाश्वत सुख का दायक है। सदैव जाग्रत एवं चौकन्ने रहने वाले आग लगने के पहले ही उसे बुझाने को पर्याप्त जल एवं रेत जमा रखते हैं, जबकि आग लगने पर कुआ खोदने वालों को दहकते अंगारों का शिकार होते देखा गया है।

जब तक दिलों की आग नहीं बुझती बाहर की आग बुझा भी दो तो क्या होता है। आत्मप्रशंसा एवं उद्दंडता के इन तत्वों से सतर्क रहना ही मनुष्यता है। ऊपर से साफ दिखने वाली शिला के नीचे कितने जहरीले कीड़े पनपते हैं—यह तो वही जानता है जिसमें शिलायें उठाने की क्षमता है। संसार को सही रूप से वही समझ सकता है, जो पहले अपने आपको अच्छी तरह से समझ ले।

न्याय की मर्यादा

न्याय की मर्यादा यही है कि प्रतिपक्षी को भी अपनी सफाई का पूरा पूरा अवसर दिया जाए। जब कोई वाद प्रस्तुत होता है तो दोनों ही पक्ष अपनी अपनी बात को सत्य सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं। न्यायाधीश के लिए तो दोनों ही झूठे तथा दोनों ही सच्चे हैं। विशाल झूठ के भूसे के ढेर में से सचाई के गेहूं निकालने का प्रयत्न वह अपनी बुद्धि के पंखे से करता है, किन्तु सच को वह निकाल भी पाया या नहीं इसमें सन्देह बना ही रहता है। यदि आपको यह अधिकार है कि आप के साथ दुर्व्यवहार करने वाले को आप सजा दिलाएं तो उसका भी यह अधिकार है कि वह अपनी बात को पूरे जोर के साथ रखे। आप को अपने गवाह सबूत पेश करने का अधिकार है तो उसको भी अपना बचाव करने तथा अपने गवाह सबूत पेश करने का पूरा पूरा अवसर मिलना चाहिए। कानून की लड़ाई में यही तो विशेषता है—चाहे दोषी कभी छूट जाए किन्तु एक निर्दोष नहीं फसना चाहिए। समय चाहे जितना लगे—देर चाहे जितनी हो जाए। किन्तु अन्धेर नहीं होना चाहिए।

जो व्यक्ति अपने कर्मों से अपने आप मर रहा है—उसे बचा कर सही रास्ते पर चलाने का प्रयत्न करो न कि व्यर्थ ही आग में घी डालकर और अधिक प्रज्वलित करने का व्यर्थ प्रयास करो। न्याय की मर्यादा यह है कि किसी के साथ भूल करके भी अन्याय न हो—

आत्मा की आवाज

न्यायाधीश का यह कर्तव्य है कि अपना कार्य व्यवहार इतना अच्छा रखें कि अपराधी को भी उसमें देवता का दर्शन हो।

कठिन से कठिन परिस्थिति में भी निरुत्साहित एवं निराश नहीं होना चाहिए। तथ्य के सामने आने पर यह देखना चाहिए कि वास्तव में किसका दोष किस हद तक है। अपनी गलती को छिपाकर झूठ का आसरा लेने से तो काम चल नहीं सकता। अपने आप को परखिये तथा भविष्य में अधिक सजग रहिये, अधिक सतर्कता एवं दृढ़ता से कार्य कीजिए। अपनी हीनता एवं दुर्बलता और कमी का प्रदर्शन भूल कर भी औरों के समक्ष कभी न करो। व्यर्थ के भय से विचलित होकर आशंकाओं का चर्चा यत्र तत्र सर्वत्र मत करते फिरो। हीन भावनाओं पर विजय पाकर आने वाली परिस्थितियों का दृढ़ता से सामना करो। निरन्तर विकास पथ पर अग्रसर होने वाला प्राणी जहाँ एक ओर अपनी रक्षा करते हुए सर्वत्र प्रगति के प्रति प्रबुद्ध रहता है वहीं औरों के भी विकास का मार्ग प्रशस्त करता है। सच्चा न्याय वही है जो चोर को साहूकार बना दे, डाकू को मजदूर बना दे, तथा उसके हृदय में कुत्सित नीच वृत्तियों के लिए घृणा पैदा कर दे।

जो यथार्थ है उससे पलायन श्रेयस्कर नहीं। सततसंघर्ष ही संजीवनी सुधा है। दूसरा संक्षिप्त मार्ग कहीं नहीं है। मनुष्य का कर्तव्य तो हर परिस्थिति का अध्ययन कर संतुलित मानस से विचार कर निष्कर्ष निकालना है, न कि पशु की तरह तुरन्त ही प्रतिक्रिया का शिकार बन कर अनुचित कार्य कर बैठना। न्यायालय नागरिकता की शिक्षा देने वाले मंदिर हैं। न्याय का आदर्श है कि व्यक्ति से निरपेक्ष तथ्यों की छान-बीन की जाये। जहाँ तक रिकार्ड या सबूत मिले, व्यर्थ झूठे गवाहों को प्रोत्साहन न दिया जाए। तथ्य के मर्म में प्रवेश करके ऐसा निर्णय दिया जाए जो दोनों दलों को यदि सन्तोष प्रदान न भी करे तो न्याय से असन्तोष भी पैदा न हो। न्याय की आत्मा सत्य है। सत्य का शोध सात्विक प्रवृत्ति से ही सम्भव है। जब मनुष्य के हृदय

में सभी प्राणियों के प्रति प्रेम व नीति-नियमों के प्रति निष्ठा हो तो वह न्याय से दूर नहीं जा सकता।

मानव धर्म

मनुष्य का धर्म क्या है ? देवता मंदिर, मस्जिद या गिरजाघर में उपासना करना मात्र ही तो मानव धर्म नही है ? मानव धर्म है मनन, स्वाध्याय एवं सत्संग। 'मानव' शब्द ही मन को वश में करके बुद्धि से कार्य लेने वाले प्राणी का प्रतीक है। जिसमें जितनी अधिक मनन शक्ति होगी वह उतना ही बड़ा मनीषी होगा। मनन करने से जो सूत्र निकले वही तो मंत्र है। मनन चिन्तन का संगम ही योजना का जनक है। योजना प्रयत्न की मां है। सर्वाधिक काम वही कर पाता है जो ऐसी योजना बना दे जिससे कार्य का प्रारंभ और पूर्णता हो। सूत्रों को इस तरह संजोए कि सारा यंत्र ही चल उठे।

जो मनुष्य हर क्षण सीखने को तैयार रहता है जो स्वयं को सदैव साधक एवं शिष्य समझता है, जिसका मस्तिष्क बिना किसी पूर्वाग्रह के सदैव नवीन तथ्य ग्रहन करने के लिए प्रस्तुत रहता है वही सच्चा शिक्षार्थी है—मानव धर्म है सदैव शिक्षार्थी बना रह कर ज्ञानार्जन को प्रस्तुत रहना—मानव मात्र को ही नहीं वरन प्राणि-मात्र को अपनी ही आत्मा का स्वरूप समझ कर सुख पहुचाने का प्रयत्न करना। 'आत्मवत सर्व भूतषू, पर द्रव्यषु लोष्टवत, मातृवत पर दारेषु,' मानव धर्म का ही सदेश है।

दुनिया के दोषों पर प्रकाश डाल सकने की क्षमता रखने वाले दीपक को अपने तले का अंधेरा कहा दिखाई देता है ? गंगा का निर्मल जल ब्राह्मण व शूद्र में भेद नहीं करता, सूर्य चन्द्र गर्मी वर्षा सब पर समान ही कृपा करते हैं। इसी प्रकार समानता की दृष्टि को अपनी सहज आदत बना लेना ही तो मानव धर्म है।

[illegible] है। किन्तु दिखावे [illegible] है। [illegible] है। [illegible] कोशिश [illegible] हो [illegible]— [illegible] है जो शुद्ध चरित्र एव [illegible] पर [illegible] है। [illegible] कर रही है उसे मानव [illegible] है।

[illegible] वस्तुओं का [illegible] है। [illegible] बढ़ने वाले भी बहुत [illegible] है किन्तु [illegible] कोई नहीं चलता। मन मे यदि [illegible] नहीं [illegible] शान्ति [illegible] विभिन्नता [illegible] देने वाले भी कुछ [illegible]।

शुद्ध मनस्वी व मानव के सदृश, मन एव इन्द्रिय निग्रह की नितांत आवश्यकता है। विज्ञान तो केवल वही है जो सारे ससार की वास्तविक स्थिति को स्पष्ट रूप से समझ कर तदाकार समयानुकूल कार्य करे। जब मनुष्य स्वय ही स्वार्थ मद व वासनाओ के वशीभूत होकर मानव देह की मिट्टी बनाने मे जुटा हो —बाहर वाला उसे कोई भी कैसे बचा सकता है ? मनुष्य की अन्तरात्मा ही तो सद्-असद् का निर्णय कर सकती है किन्तु आत्मा की आवाज को जगा देने वाला तथा जीवित एव जागृत रखने वाला धर्म ही सच्चा मानवधर्म है। तथा आत्मा की हत्या करने मे सहायक भोग वासना की ओर प्रवृत्त करने वाला धर्म कभी भी सच्चा धर्म नही हो सकता। मन के प्रभाव मे मानव का सारा शरीर आबद्ध हुआ रहता है। मन क्या है इन्द्रियो का राजा या दास—प्रत्येक व्यक्ति की इच्छा-शक्ति एव दृढ़ता का निर्माण भी कैसे होता है—शुद्ध एव निष्पक्ष बुद्धि से ! अन्यथा मन मे तो सामाजिक परम्पराओ द्वारागत धारणो का महान जंजाल बना रहता है ! प्रज्ञा-चक्षु प्राप्ति करने के लिए

आवश्यक है कि मानव स्थितप्रज्ञ बने। अपनी बुद्धि निर्मल एवं शुद्ध करे। गायत्री मन्त्र मानव धर्म का सार्वभौमिक प्रतीक है, जो कहता है 'परमपिता परमात्मा आप सर्वत्र व्यापक है। आप प्रकाश के पुंज हैं, आप हमारी बुद्धि को शुभ कार्यों के प्रति प्रेरित करो।

— — — —

धर्म का मर्म

भविष्य की चिन्ता से आतुर होने वालो, वर्तमान को न बिगाड़ो। तीर्थों के स्वपनों में डूबने वालो! घर छप्पर को न लडाओ। वैकुण्ठ की आकांक्षा करने वालो! जीवन को नश्वर जान वर्तमान में विनाश के बीज न बोओ। कर्मफल की आकांक्षा करने वालो कर्म तो करो। श्रम से जी चुराना वेतन जात देह को शव बनाने की प्रक्रिया है। कौन कहता है कि जप, तप तीर्थ, भ्रमण, दान, यज्ञ आदि बेकार है? ये सभी साधन जीवन को तपाने तथा शिक्षा देने के अमूल्य साधन है ही, किन्तु यह किसने कहा कि मंदिर के बाहर झूठ बोलो, कम तोलो, धोखा दो, धक्का दो? क्या इस प्रकार पुण्य संचय होता है। हजारो लोगो को नकली दवा, मिलावटी वस्तुएं आदि देकर सहस्त्रो रुपयो की कमाई का भव्यमंदिर बनाने को क्या आप मुक्ति मार्ग मानते हैं? यदि हा, तो आप भ्रम में हैं। जो पारब्रह्म परमेश्वर सर्वत्र व्यापक है। सच्चिदानन्द आनन्द कन्द, कृष्णचन्द्र, घट घट वासी है तो फिर उसकी निगाहों से क्या कुछ छिप सकता है। क्या उसकी उपासना भव्य कंगूरो वाले संगमरमर के विशाल प्रासाद बनाने से होती है? जो मानवदीन, दलित, क्षुधित एवं पीड़ित है जिसको खाने को दाना नहीं मिल रहा है, जो रोग मे कराह रहा है उसे सहारा दो, उसे भोजन दो, यही तो सच्ची पूजा है—सच्ची सेवा है। भगवान को प्रसन्न करने की धुन में लाखो रुपया फूकने वाले कुबेरो! अपने दृष्टिकोण को बदलो तथा सेवा मंदिरो की स्थापना करो। बिना प्रयत्न के उत्थान हो नहीं सकता, बिना स्नेह के प्रकाश हो नहीं सकता, बिना सूरज के दिन हो

गणनायन्दना

जीवन एक जलता हुआ दीपक है। स्नेह का सम्पादन करना और प्रकाश बिखेरना इसका स्वाभाविक धर्म है। जाने अनजाने जब दीपक पर कालिख सा आ जाता है तो लौ मलिन हो जाती है—नैराश्य के लिये जीवन में भी कालिख को छुड़ाना ही पड़ता है। दोष दुर्गुणों की कालिमा से मुक्ति पाकर प्रकाश में पुन नये प्राण आ जाते हैं। प्राणों की नवीन ऊँचाई प्रदान करने के लिए ही तो उत्सव मनाने का क्रम चला है। जब हृदय से उल्लास का झरना बरबस फूट पड़े—स्वाभाविक रूप से प्रवाहित हो जाए—तभी तो कहा जाता है कि उत्सव हो रहा है। सामाजिक जीवन को गुणयुक्त करने तथा नये नये शुभ संस्कार डालने के लिये ही तो उत्सव महोत्सव की परिपाटी चल पड़ी है।

गणेश का अर्थ है गणों का ईश अर्थात् परमेश्वर। गणपति का अर्थ है गणों का स्वामी अर्थात् राष्ट्रपति, मुखिया। मुखिया या नेता कैसा हो, जो गणपति के आकार का हो—जिसके कान बड़े हैं—हर बात को सुन सके, नाक लम्बी हो, अपनी इज्जत एवं मर्यादा का पूरा पूरा ख्याल रखे, पेट बड़ा हो—हर तरह की बातों को पचा सके—गंभीर हो—नयन छोटे हो—छोटे मोटे दोष दुर्गुण तो देखे ही नहीं। नेतृत्व शक्ति जिसमें कूट कूट कर भरी हो, जो जनता को नयन दे सके—वही तो नेता हो सकता है। नेता का प्रमुख गुण है—प्रारम्भिक शक्ति (Iniciative) पहल या पहल पहल—जो सोच भी सके तथा पहल भी कर सके। गणेश जी की दो पत्नियाँ ऋद्धि, सिद्धि हैं—ऋद्धि क्या है शाब्दिक बुद्धि ही ऋद्धि है। जहाँ शुद्धि बुद्धि है वहा सिद्धी स्वयं ही उपस्थित है। जहाँ शुद्ध बुद्धि रूपी ऋद्धि है, वहाँ हर प्रकार की सिद्धि है तथा पुष्टि भी है। गणेश का वाहन चूहा—तर्कशक्ति का प्रतीक है। इतने बड़े हाथी जैसे डील डौल को छोटा सा चूहा मन कहाँ नहीं ले जाता क्या नहीं कराता? मन को ही वाहन माना गया है। श्री गणेश बुद्धि एवं विद्या के दाता हैं। जीवन में निरंतर मधुरिमा का संचार करने का प्रतीक मोदक भला किसे

प्रिय नहीं हैं। बिना मधुरता एवं स्नेह स्निग्धता के विद्या—अर्जन कितना कठिन है। गणतंत्र के नागरिकों का जीवन बुद्धि प्रधान होना चाहिये। बुद्धि भी ऋतुमती होनी चाहिये जो सत्य से भरी हो। सत्य का मुख तो स्वर्ण ने ढका है। अतएव पहले स्वर्ण के आकर्षण से अपने आपको अलग रखना होगा। बुद्धि प्रधान जीवन का तात्पर्य यह नहीं कि केवल बुद्धिवादी बनकर जो कुछ अपने हित में, हाथ में हो, वही करे—अपितु बुद्धि का तकाजा है कि हम अपना, अपने परिवार का, समाज एवं राष्ट्र का भी पूरा पूरा ध्यान रखें। हमारे जीवन की गतिविधियों की मनोवृति स्वार्थी न होकर परमार्थी हो, व्यक्तिगत न होकर सामाजिक हो, राष्ट्रीय हो। जब तक राष्ट्र में रचनात्मक नेतृत्व नहीं उभरता तब तक विस्फोटक स्थिति ही बनी रहेगी। यत्र, तत्र, सर्वत्र विघटन की प्रवृति पता नहीं राष्ट्र को कहां ले जायेगी। सच तो यह है कि परनिंदा से बढ़ कर कोई पाप नहीं हो सकता, अकर्मण्यता से बढ़ कर कोई सहायक नहीं हो सकता, शुभ कर्म से बढ़कर कोई सहायक नहीं हो सकता। आवश्यकता इस बात की है कि नेतृत्वर्ग न केवल अपनी बाह्य दृष्टी में ही संशोधन करें अपितु आन्तरिक नयनों का भी विकास करें। कोरे आरम शूर बनने से ही तो कोई काम चलता नहीं – अंत तक निबाह ले जाने वाली प्रीतमा के पुंज प्रबुद्ध वर्ग की आज राष्ट्र को कितनी आवश्यकता है। गणतंत्र के समता, स्वतन्त्रता एवं बन्धुत्व के सिद्धांतों को जन-जन मन-मन में रमा कर गणतान्त्रिक पद्धति का महत्व प्रतिष्ठापित करना हो तो गणतंत्रोत्सव का महान सन्देश है। राष्ट्रीय चेतना के पावन प्रतीक इस महान पर्व पर हम अपने आप का विश्लेषण कर स्वयं को, परिवार को, समाज को एवं राष्ट्र को यदि सजा कर संवार सके तो वस्तुतः हमारी गणेश वंदना सार्थक एवं यश स्वी हो सकेगी।

ब्रह्म विद्या

लोगों को संसार में मनुष्य रूप में आकर यह जानना कि सृष्टि क्या है, उसके गुप्त रहस्य क्या है? विद्या

गणशवन्दना

जीवन एक जलता हुआ दीपक है। स्नेह सम्पादन करना और प्रकाश प्रदान करना इसका स्वभाविक धर्म है। जलते जलते जब दीपक पर काजल छा जाता है तो लौ मद्धिम हो जाती है—तेजस्विता के लिये जीवन से भी काजल को छुड़ाना ही पड़ता है। दोष दुर्गुणों की कालिमा से मुक्ति पाकर प्रकाश मे पुन नये प्राण आ जाते हैं। प्राणों की नवीन प्रेरणा प्रदान करने के लिए ही तो उत्सव मनाने का क्रम चला है। जब हृदय से उत्साह का झरना बरबस फूट पड़े—स्वभाविक रूप से प्रवाहित हो जाए—तभी तो कहा जाता है कि उत्सव हो रहा है। सामाजिक जीवन को सुसकृत करने तथा नये नये शुभ संस्कार डालने के लिये ही तो उत्सव महोत्सव की परिपाटी चल पड़ी है।

क्या है और अनित्य क्या है ? आत्मा क्या है और परमात्मा क्या है ? जब तक इन गूढ़ तत्वों का परिचय प्राप्त न किया जाए हम स्वयं को भी समझ पाने में सर्वथा असमर्थ रहेंगे। जो ज्ञान आत्मा को प्रकाश से भर दे, मन एवं इन्द्रियों को समन्वित, संयमित कर के मानव में परमात्मा के परम तत्व के दर्शन हेतु व्याकुल विवशता उत्पन्न कर दे, जो अंतःकरण चतुष्टय अर्थात मन, बुद्धि, अहंकार को एक साथ लगा कर सत्य के दर्शन करादे, वही तो विद्या है। शेष तो केवल इन्द्रिय-तृप्ति भौतिक सुख समृद्धि की अनेकानेक लालसाएं जगाने वाला केवल मन, केवल बुद्धि या केवल विवेक को उद्बुद्ध करने वाला ज्ञान—विद्या तक पहुंचने का माध्यम हो सकता है। किन्तु विद्या नहीं। जो ज्ञान हृदय में श्रद्धा के अंकुर प्रस्फुटित न करा सके उसे विद्या कहा भी कैसे जा सकता है ? पंकिल सरोवर में खिले हुए पंकज पर आसीन है विद्या की देवी सरस्वती, जग में रहते हुए भी जल से ऊपर, उससे पृथक। जो विवेक, लगन, तन्मयता, बुद्धि एवं सरलता की साक्षात् प्रतिमा है। जो जीवन-शास्त्र का निर्माण कर सके वही तो विद्या है।

जो मानव में भेद के विष बीज बोए, जो मानव समाज को ध्वंस की शिक्षा दे, जो मानव में अहं, गर्व एवं बड़प्पन की भावना इस कदर कूट कूट कर भर दे कि निरन्तर राक्षसी वृत्ति का संचार हो—उसे तो अविद्या ही कहा जायेगा। आप चाहे डाक्टर हों या वैद्य, वैज्ञानिक हों आविष्कारक प्रशासक हों या उद्योगपति किन्तु यदि आप में नैतिकता, सच्चाई एवं ईमानदारी नहीं है, यदि आप में अपने आपके प्रति विश्वास नहीं है, यदि आप केवल बाह्य दृष्टि से ही गोचर जगत को ही सब मानते हैं तथा अपना काम बनाने के लिए निरपराधों का गला काटने से भी नहीं चूकते हैं तो ज्ञान चाहे जितना आप में हो, ज्ञानी आप अपने आपको भले कहें, विद्या में तो शून्य ही कहे जाएंगे। बाह्य रूप से ही तो संसार के सारे कार्य नहीं होते। अन्तर को शुद्ध एवं पवित्र करने के लिए आवश्यकता है कि मनुष्य नित्य अपने आपको आत्मचिंतन एवं

मन के मंजन से माजता रहे । ब्रह्मविद्या का प्रमुख लक्ष्य मानव के चरित्र में सत्यं शिवं सुन्दरं की सृष्टि कर व्यक्तित्व को समृद्ध करना है। अहिंसा इसलिए कि हम जिन्हें जन्म नहीं दे सकते उन्हें मारने का अधिकार भी हमें नहीं—सत्य इसलिए कि म त्य अतत दु खदायी ही होता है—चाहे क्षणिक सुख लाने के लिए मिथ्या का सहारा लिया जाए किन्तु अन्ततोगत्वा सत्य की ही विजय निश्चित है—वही सुख का चरम सोपान है—राम के दरबार का राज्य मार्ग है। अस्तेय—इसलिये कि सभी वस्तुएं क्षण भगुर है, नाशवान है, ईश्वर सर्वत्र है—शायद है—उसमे बेकार नश्वर वस्तुओ की आराधना क्यों की जाए? ब्रह्मचर्य—इसलिए कि श्रेष्ठता के लिए इन्द्रियदमन, सदैव ही सजीवनी शक्ति का कार्य करता है अन्तरात्मा मे स्थित ब्रह्म का साक्षात्कार करने के लिए नितान्त आवश्यक है कि ब्रह्मचर्य को जीवन का अंग बनाया जाए। अपरिग्रह भी चिन्तामुक्ति एवं क बखेडो से बचने का महान साधन है। न अधिक सग्रह न अधिक चिन्ता। दीर्घ जीवन के लिए जितना यह आवश्यक है कि हम खाने के लिए जीए तथा जीने के लिए अन्न, स्वाद रहित भोजन करे उसी तरह सुदृढ स्वास्थ्य के लिए यह आवश्यक है कि प्रति दिन नियमित रूप मे शारीरिक श्रम करें। जो विद्या मानव में सदाचार, सहिष्णुता एवं श्रेष्ठता का सचार कर उसे निर्भय बना दे, वही तो सच्ची विद्या है। आत्मा की अमरता का ज्ञान एवं स्वयं को आत्मा से अभिन्न मानकर सारे विश्व मे अपने ही आतर स्वरूप प्राणियों की भूरियों को सूक्ष्म दृष्टि से देखने की रुचि प्रदान करने वाली विद्या ही सच्ची विद्या है। इसे ही ऋषियो ने ब्रह्मविद्या कहा है।

अछूतोद्धार

यह देख कर बड़ा ही आश्चर्य होता है कि एक ओर तो हम भारतीय 'सर्वे भवंतु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयः', की घोषणा करते हैं ईश्वर-अश जीव अविनाशी मानते हैं तथा प्राणी मात्र द परमात्मा का आत्मा की आवाज

अधिकार मानते हैं और दूसरी ओर मानव] मानव में इतना भयंकर भेद पैदा कर देते हैं कि भंगी गान्धारी मनुष्य को अस्पृश्य कह कर कभी भी अपने समीप नहीं फटकने देते। और तो और हम उन्हें भगवान के मंदिर में भी नहीं जाने देते- हम समझते हैं कि भंगी, चमार आदि के प्रवेश से हमारा मंदिर अपवित्र हो जायेगा तथा मन से कभी कोई भंगी या चमार भाई मंदिर में भगवान के दर्शनार्थ आ भी जाएं तो हम भगवान की पूजा छोड़कर अपशब्दों एवं क्रूर प्रहारों से उसी की पूजा करने लग जाते हैं। कितनी बड़ी खाई है हमारे आचार और विचार में। इस विषमता का कोई पार है? कथनी और करनी के भेद ने सारे देश का आचार भ्रष्ट कर दिया है। धर्म का मर्म तो मानव को आत्मा का साक्षात्कार कराना है ताकि वह इन थोथे भेद-विभेदों से ऊपर उठ सके किन्तु हमने सच्चे धर्म को त्याग कर परम्पराओं, प्रथाओं एवं रूढ़ियों को गले लगाया है- जिसका परिणाम है कि अंधविश्वास जितना भारत वर्ष में पांव तोड़ कर बैठा है उतना विश्व के किसी भी देश में नहीं है। कहते हैं कि भारत धर्मप्राण देश है- किन्तु सच तो यह है कि यह धर्मप्राण नहीं धर्म भीरू देश है सच्चे धर्म को खोज कर उस पर चलने की बात तो दूर रही यह तो केवल प्रथापूर्ति एवं परम्परागत मर्यादाओं के निर्वाह में ही अपने कर्तव्य की इति-श्री समझ रहा है। आचार एवं विचार दोनों में जब तक अन्तर है, धर्म के सच्चे स्वरूप का पालन किया भी कैसे जा सकता है। अत्यन्त पवित्र वस्त्रों को पहन कर भगवान का चरणामृत पान करने वाले पुजारी यदि पराई स्त्रियों के रूप-सौन्दर्य का मान करने तथा मन में उनके साथ कुकर्म करने के विचारों को प्रश्रय देता है तो उसे पवित्र नहीं कहा जा सकता। आंतरिक पवित्रता, ही सच्ची पवित्रता है वैचारिक शुद्धि को ही पवित्रता कहा जाता है। 'भंगी को मंदिर में प्रवेश न करने दो' का तात्पर्य यह है कि उस व्यक्ति को जिसके विचार गंदे हैं, आचार कुत्सित है तथा जिनके कार्य सामाजिक मर्या

आत्मा की,

दर्शन करने वाले हैं उन्हें मंदिर जैसी स्वच्छता, पवित्रता एवं शान्तिमयता प्रदान करने वाली पवित्र वस्तु न माने किया जाय। मन तो यह है कि इस की यह मानव देह एक परम पवित्र मंदिर है। हमें अपने मन को मंदिरवत् स्वच्छ, निर्मल, शान्त एवं स्थिर बनाना चाहिए तथा उसमें सद्विचार रूपी परमात्मा की प्रतिष्ठा करनी चाहिए। काम क्रोध, चोरी, हिंसा के कुत्सित विचार जो सामाजिक मर्यादा को भंग करने की प्रेरणा देकर हमें पथ-भ्रष्ट करते हैं – वस्तुतः अस्पृश्य हैं। वासनाओं को प्रदीप्त करने वाले विचार जो मनुष्य का प्रगति के स्थान पर पतन की ओर ले जाते हैं—विकास के बदले विनाश के गर्त में गिराते हैं—वास्तव में अछूत हैं—इनसे बचना ही चाहिए। इन्हें कभी भी अपने मन रूपी मंदिर में प्रवेश नहीं करने देना चाहिए अन्यथा ये हमारे शरीर को भ्रष्टाचार का अड्डा बना देंगे। किसी जाति विशेष या मनुष्य विशेष को अछूत नहीं मानना चाहिए—अछूत तो वह विचार हैं जिनसे हर आदमी को बचना चाहिए, फिर भी वे जबरदस्ती सिर पर सवार होकर पतन की ओर उन्मुखता देते हैं – 'आत्मवत् सर्व भूतेषु' के सिद्धान्त में विश्वास करने वाले भारतीय अछूतोद्धार की समस्या पर इस प्रकार विचार करें तो सामाजिक संघर्ष का कोई प्रश्न उपस्थित नहीं हो सकेगा।

———

व्यक्तित्व को रुपाचित करें

हर व्यक्ति को जीवन तो जीना ही पड़ता है किन्तु जीवन की ज्वलंत समस्याओं से हर बार मुंह मोड़ कर पलायन कर जाने वाले व्यक्ति कभी भी शक्ति संचय करके पुरुषार्थ को अभिव्यक्त नहीं कर पाते। जीवन का अर्थ है सतत संघर्ष, असत्य, अनाचार एवं अन्याय से निरन्तर संघर्ष तथा अन्धकार, अहंकार एवं अनीति से निरन्तर युद्ध। जीवन का अर्थ है असम्भव एवं अनहोनी घटनाओं वा मुसीबतों से सामना तथा हर क्षण अदम्य जीवन एवं उत्साह का प्रदर्शन। धरा के कण कण में जीवन की आभा व्याप्त है—कर्म की दीपशिखा के प्रकाश में धर्म के

ुन-रहस्य स्वभाविक रूप से प्रत्यक्ष होते जाते हैं—आवश्यकता है
ालचक्र के शाश्वत् नियमों को निष्पक्ष रूप से हृदयंगम करने की।
क्षणभंगुर मानव जीवन नित नये कार्य पर ठोस उपलब्धियों को रचे
लगाने के लिए है, न कि उदासीनता का वातावरण निर्मित कर कोमल-
वृत्ति में उमंगों का गला घोंट देने के लिए। विद्वेष की भयंकर अग्नि
जब चारों ओर धधक रही हो – निन्दा की नागिन जब डसने को फन
लपलपा रही हो आलस्य की काल-रात्रि जब भयंकर अन्धकार फैलाकर
र प्रबुद्ध प्राणी को पथ-भ्रष्ट करने को आतुर हो, ज्ञान का तकाजा है
कि विद्वद्जन प्रगल्भता एवं उद्दंडता के कोहरे से मुक्त होकर जीवन की
ोस सच्चाइयों को जन-मानस के समक्ष व्यक्त करें। परम मेधावी एवं
ानस्वी होने का प्रमाण यही है कि हम अवसर वादी बन कर जीवन के
ाश्वत श्रेय पथ से डिग न सकें। पंडित एवं मूर्ख में अन्तर यही है
कि एक प्रत्येक कार्य को सोच समझ कर अपनी अकल से करता है तो,
ूसरा दूसरों के इशारों पर ही जीवन का ताना बाना बुनता रहता है।
विद्वान के लिए अनेकों सुख वैभव भी बन्धन के साधन एवं तर्क के द्वार
जबकि मूर्ख के लिए नर्क भी सुख का स्वर्ग है। जब तक हमारे आस
ास दीन दुःखियो एव दरिद्रनारायणो का भारी जमघट लगा है तब
क न केवल हमारा सुख चैन ही खतरे में है, अपितु सुरक्षा भी मात दे
। स्थाई शान्ति के लिए आवश्यक है कि दीनो का दुःख हमेशा के
लिए मिटा दिया जाए।

मन की उत्ताल तरंगों के बहाव में बह जाने वाला मनुष्य न केवल
अपने विवेक का ही विनाश कर लेता है अपितु अपने प्रयत्न भी व्यर्थ
कर कार्यों में लगा कर व्यर्थ ही अपने जीवन को नष्ट भी कर लेता है।
उस नासमझ को क्या कहा जाए जो विशाल रेगिस्तान को सागर समझ
कर उसमें रत्न खोजने का प्रयत्न करता है तथा अन्त में बालू में ही
... मल कर प्राण दे देता है। मृग मारीचिका में उलझ जाए तो उस
र ग दे ...ैन पशु में अन्तर ही क्या रहेगा ? क्षणिक आवेश का ...

आत्मा की पुकार

भाव के वशीभूत होकर जीवन के चिन्मय-सत्यों को त्याग देना वस्तुतः पशुत्व की ओर प्रमाण करना ही है. भावातिरेक में कोई निर्णय लेना उचित भी तो नहीं है । तर्क एवं विवेक के आधार पर निष्पक्षता से जो कार्य किया जाता है वह भावावेश या किसी प्रलोभनवश किये गए कर्म से लाख गुना अधिक अच्छा होता है । बड़ा वह नहीं जो बहुत बड़ी बड़ी ज्ञान की बातें बघारता है, या समाज सुधार के उपदेशों की झड़ी लगा देता हैं अपितु बड़ा तो वह है जो लोगों की कटु से कटु तथा अशोभनीय स्वनिन्दा की मर्मभेदी बातों को भी प्रशान्त धैर्य के साथ सुनता है। धरती से बढ़कर सहनशील कौन है—चराचर की सद्-असद् वृत्तियों एवं आचरण की गुरुता-लघुता को सहन करके ही तो माता के महानतम पद को धरती ने पाया है । हृदय के कपाट तो कपट हीनता से ही खुलते हैं । निराधार आरोपों पर चिन्तन कर क्रोध को प्रश्रय देना श्रेयस्कर नहीं । युग की विभीषिका के सामने पराजित होकर विवेक, मर्यादा एवं मनुष्यता को हाथ से मत जाने दो । केवल ज्ञान से ही तो जन्म-जन्म के संस्कारों से मुक्ति नहीं हो सकती । निर्वाण, मोक्ष, मुक्तियां आजदी के लिये ज्ञान, कर्म एवं भक्ति, श्रद्धा एवं विश्वास की त्रिवेणी प्रवाहित करना ही होगी । व्यक्तित्व को ठोस बनाइए । खोखले व्यक्तित्वों की भी संसार में कोई कमी है नहीं ।

महात्मा कौन ?

काम चाहे कितना ही बड़ा, कठिन एवं कष्ट साध्य क्यों न हो, हमें स्वयं ही करना चाहिए हर क्षेत्र में पैनी दृष्टि रखने से ही सिद्धि प्राप्त होती है, पर निर्भरता तो नैराश्यहीनता की ही प्रतीक है। हर प्रकार के सुख में जहां एक ओर किंचित दुःख के अंकुर भी गुप्त रूप से निहित है, वहीं प्रत्येक प्रकार के दुःख की भयावह काली रेखा के पार्श्व में सुख की रजत रेखा भी खिंची रहती है। काम जिसे अपना समझ कर लेने से बिगड़ते हैं वह तो अपना सिद्ध हो जाता है, तथा

सपना समझकर जिसे छोड़ दिया जाता है वही वस्तुतः अपना हो जाता है।

सद्‌गुणों का संचय शनैः शनैः एवं निरन्तर प्रयत्नों से ही होता है। दुर्गुणों का प्रसार तो अपने आप स्वभाविक गति से तीव्रता से होता है जबकि सद्‌गुणों के स्थाईत्व के लिए मन पर बार बार संयम नियम का अंकुश लगाना पड़ता है। लाल या हरी मिर्च मुंह में लेते ही अपना असर दिखाती है—सारे शरीर में झनझनाहट एवं आग पैदा हो जाती है, नेत्रों से जल बहने लगता है, इसी प्रकार दुर्गुण या दुराचार कर लेशमात्र मवाद की भांति सारे शरीर की क्रियाओं को अस्त-व्यस्त कर देता है। सुख एवं भोगों का स्वेच्छा से त्याग ही तो तपस्या है, दरिद्रता के कारण एवं सुख भोग की उपलब्धि ही न होने के कारण कष्ट उठाना कोई तप नहीं है। प्राप्त सुखों से जान बूझ कर दूर रहना ही तप है। तप त्याग का ही तो पर्याय है। तप के बिना साधना संभव नहीं और बिना साधना के सिद्धि प्राप्त नहीं होती। युग की मांग है कि हम अपने व्यक्तिगत सुख और वैभव का अधिक से अधिक परित्याग करें। अधिक सोना, अधिक खाना, अधिक जगह घेरना, अधिक वस्त्र पहनना या अधिकाधिक वस्तुओं का संग्रह सर्वथा अवांछनीय है। अपने लिए कम से कम लेकर समाज की अधिकाधिक सेवा करना ही भारतीय संस्कृति का मूल स्वरूप है। अपने कार्य को राम की पूजा जैसा पवित्र मान कर आसक्ति के साथ अधिक से अधिक समय श्रम और सेवा में लगाना ही सफलता और श्रेष्ठता का स्वर्गीय सोपान है। निश्चित समय पर या उससे भी पूर्व ही कार्य क्यों न निपटाया जाए! शिथिलता या सुस्ती का वरण तो स्वर्ण-देह को शव में परीवर्तित करना है

जहां डगमगाने का प्रलोभन है, जहां विषय-विकारों की तृप्ति के लिए पर्याप्त साधन उपलब्ध हैं, उनके मध्य रहकर भी जो उनके चंगुल में न फंसे, तथा निरन्तर अपने काम से काम रखे, वह गृहस्थ

आत्मा की आवाज

होते हुए भी वैरागी है। संसार का त्याग करके, गिरि-कंदरा में वास करने वाला यदि वैरागी, तपस्वी, ब्रह्मचारी एवं साधक हो, तो इसमें अचरज की बात क्या है, क्योंकि वन में उसको डिगाने के साधन ही कहाँ हैं? किन्तु जो संसार के बीच रहकर संसार के समस्त कार्यों को करता हुआ, समस्त प्रकार की उलझनों को सुलझाता हुआ, हर प्रकार की कठिनाई पर विजय प्राप्त करता हुआ सम्भावित विपरीत परिस्थितियों से भी [illegible] हुआ भी सदाचार एवं वैराग्य द्वारा मन को वश में करके स्वयं के प्रलोभनों में नहीं फँसता, वही कर्मयोगी तपस्वी है, महात्मा है। विकारों का कारण रहते हुए भी जो विचलित न हो वही तो वीत-रागी है—वही व्रती है, वही साधक-सूरमा है। परमार्थ की आकांक्षा रखने वालो! मोक्ष की कामना करने वालो! ईश्वर का सान्निध्य प्राप्त करने की तमन्ना रखने वालो! संसार को छोड़ कर भागो नहीं, सन्यासी मन बनो। योगी बनो—कर्मयोगी, धर्म-योगी एवं मर्म-योगी। मन एवं इन्द्रियों के दास मत बनो, यही महान साधना है। इन पर स्वारी करो तथा अजर-अमर आत्मा के दर्शन करो—आत्म-स्वरूप को पहचानो। इन्द्रिय तृप्ति की रेशमी ग्रन्थियों को एक ही झटके में तोड़ कर जितेन्द्रिय बन जाइए। गृहस्थ आश्रम में ही ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ एवं सन्यास का आनन्द लीजिए। गृह त्याग करके महात्मा कहाने में कोई आनन्द नहीं है——घर में रहते हुए ही संसार की असीम सेवा कर दिखाने में ही महानता निहित है। अपने कार्य को ही पूजा का महत्व दीजिए, अपने आचरण को ही तपस्या मानिए, तथा विश्व निरन्तर कठिनाईयों की अग्नि में स्वार्थों को कुन्दन बनाते हुए दीप्ति-मान होते जाइए—और अपनी त्रिभुवन-मोहिनी मुस्कान से संसार में नव जीवन की तरंगों को प्रवाहित कीजिए।

प्रयत्न प्रारम्भ तो कीजिए

यह छोटी सी देह मानव की अनन्त शक्तियों का कोष है। इस के

अकेला ही उत्पन्न होता है और अकेला ही मरता है, किन्तु अपने हृदय में स्थित परमात्मा का जो धीर लोग साक्षात्कार करते हैं, उन्हीं को शाश्वत्-सुख मिलता है अन्यों को नहीं। आत्मतत्त्व की प्रतिलिपि के रूप में विश्व को भारतीय संस्कृति की यह एक महान देन है। आगे कहा गया है कि:—'अयमात्मा स्वयं साक्षाद् गुणा रत्न महार्णव.'

सर्वज्ञ: सर्व दृक् सार्व परमेष्ठी निरञ्जन:'

'यह आत्मा स्वयं साक्षात गुण-रूपी रत्नों से भरा हुआ समुद्र है, यह सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, सर्व-गति दाता, परम पद में स्थित और सब प्रकार की कालिमा से रहित है।'

इस प्रकार का आत्मज्ञान ही ब्रह्मज्ञान की प्रारम्भिक भूमिका है। जिसे ब्रह्मज्ञान हो या जो ब्रह्म का साक्षात्कार करें उसे ही ब्राह्मण कहा जा सकता है। अतएव आवश्यकता इस बात की है कि प्रतिछाया के दर्शन करें तथा हर परिस्थिति से आनन्द ग्रहण करने का प्रयत्न करें। जी हाँ, संकट की घड़ी में भी मुस्कराएं तथा दुःख के सागर में आनन्द की लहरों का मजा लें। हमें अपना स्वभाव ऐसा ही बनाना चाहिए जो हर तरह के विषादपूर्ण संवादों को जिधर से आए उधर ही वापिस करने में समर्थ हो सकें, अपने पास उनका परिवर्तित, ऊर्ध्वीकृत मुस्मय स्वरूप ही पहुचने दे।

केश काले करने के उपाय

आपने अनेकों विज्ञापन पढ़े होंगे कि अब केश श्वेत होने की समस्या नहीं रही। अमुक तेल का इतने दिन प्रयोग कीजिए तो आपके केश न केवल झड़ना ही बंद हो जाएंगे, काले प्रतापनों या अन्य इसी प्रकार के तेलों का उपयोग करने वालों से पूछा जाए तो वे यही कहेंगे कि कुछ समय के लिए तो उनके केश काले अवश्य दीख पड़ते हैं। कोई लोग ईरानी मेंहदी का प्रयोग करके केश काले करने का प्रयत्न करते हैं,

प्रचलित है कि महर्षि चरक ने अपने ग्रन्थ की रचना करने के पश्चात् यह जानना चाहा कि मेरे ग्रन्थ को सभी वैद्यगण सही रूप में समझ भी सके है या नहीं। इस हेतु उन्होंने एक पक्षी का रूप धारण किया तथा प्रत्येक वैद्य के प्रांगण में आकर कहने लगे 'को मृक, को रक ?' अर्थात् दुनिया मे कौन निरोगी है, कौन रोगी है ? वैद्यो ने अपनी अपनी मति से उत्तर दिया जो च्यवनप्राश का सेवन, मकर ध्वज या स्वर्ण भस्म या वंग भस्म का सेवन करें, किन्तु वैद्यराज वागभट्ट ने उत्तर दिया 'हित भुक्,मितभुक्,ऋत भुक्' अर्थात् जो हित कर पदार्थ भी सीमित मात्रा में ही खाता है और जो सच्चाई और ईमानदारी से कमाए हुए अन्न का ही भोजन करता है वही संसार मे रोगी या बीमार नही है अतएव स्वस्थ रहने के लिये जहां उत्तम स्वास्थ्यकर पौष्टिक खाना जरूरी है, वहाँ कम खाना तथा न्याय नीति से कमा कर खाना भी जरूरी है। जीवन मे स्वास्थ्य सौंदर्य, दीर्घायु एवं यौवन का अमृत पाने के लिये आवश्यक है कि हम सदाचारी रहे। आचार ही सुख का सोपान है, न कि केवल धन।

'आचारालभते ह्यायुरा चा रादीप्सिता प्रजा। आचाराद्धन मक्षय्यमाचारो हन्त्य लक्षमणम्' ——मनु

मनुष्य सदाचार से ही दीर्घ आयु को प्राप्त करता है। आचार मे ही मनचाही सुन्दर सन्तान प्राप्त करता है। आचार से ही अक्षय-धन अर्थात् विद्या, बुद्धि एवं शक्ति प्राप्त करता है आचार मनुष्य के सभी कुलक्षणो तथा कुविचारो को दूर कर देता है।

महर्षि चरक ने दीर्घायु एवं सदैव स्वस्थ रहने के लिये सदाचार का अत्याधिक महत्त्व दर्शाया है। चरक सूत्र अध्याय 8 मे लिखा है।

१—नानृतवयात कभी असत्य न बोले।

२—नान्यस्त्रियम मिलपेक, नसान्यश्रियम-परस्त्री तथा पर धन की इच्छा न करो।

३—न वैर रोचयते—किसी से भी शत्रुता न रखो।

४—न कुर्यात पापम्—कभी पाप कर्म न करो।

५—नान्य दोषान् वदेत—दूसरों के दोषों एवं मर्मगुणों का बखान न करें।

६—नान्य रहस्य मागमेत—किसी भी गुप्त बात को प्रकट न करो।

७—नाधार्मिक स्यात्—कभी भी अधर्म का आचरण न करें।

८—नतरेन्द्र विद्विष्टेन सहासीत्—राजद्रोहियों का साथी न बने।

९—नाम्मनर्त पतितैर्न भ्रूणहन्तृभि नं क्षुद्रैर्न दुष्टैः. उन्मत्त, नीच, भ्रूण हन्तारे, क्षुद्र व दुष्ट का साथ न करे।

१०—न पाप वृत्ताम् स्त्री, मित्र, भृत्यान भजेत—पाप वृत्ति वाली स्त्री मित्र एवं भृत्य का भी साथ न करें।

११—नोत्तमैर्त विरुध्येत्—श्रेष्ठ स्वभाव वाले धर्मात्मा का विरोध न करो।

१२ नाव रातु पासीत—नीचों का संग छोड़ दे।

१३—न जिह्मं रोचयते—कुटिल चरण न करें।

१४—नानार्य माश्रयेत—कभी अनर्थ पुरुष का आश्रय न ले।

१५—न साहसाति स्वप्न, प्रजागर स्नान पानाशनान्यासेवत,—दुस्साहस, निन्द्रा, जागरण, स्नान, पान या भोजन से बचे।

१६—न सतो न गुरून परिवदेत्—सतपुरुषों एवं गुरुओं की निंदा न करें।

१७—न ति सयम भिन्द्यात—समय एवं मर्यादा का उलघन न करें।

१८—न बालवृद्ध लुब्ध, मूर्ख, क्लिष्ट क्लीबैः सहमाना कुर्यात्—बालक, वृद्ध, लोभी, मूर्ख, दुष्ट स्वभाव एवं नपुंसक के साथ मैत्री न करें।

१९—न मद्य द्यूत वैश्या प्रसंग रुचि शराब, जुआ, वैश्यागमन, में रुचि न लें।

२०—न प्रदू य विवृणयात्—अपनी गोपनीय बातें प्रकट न करें।

२१—नाहमानी स्यात्—अभिमानी न बनें।

२२—न चारी स्यात—ज्यादा बकवास न करें।

२३—न [illegible] न मुदितः स्यात्—अधीर व [illegible] न हो।

२४—नैकः सुखी—अकेला अपना ही सुख न चाहे सबके सुख की कामना करें।

२५—न सर्वविश्रम्भी—हर एक पर विश्वास न करो।

२६—न सर्वाभिशंकी—न हर एक को शंका की दृष्टि से ही देखो।

२७—न कार्यकालमति पातयेत—किसी भी कार्य को करने के लिये न टालें।

२८—नापरीक्षितमभिनिविशेत—अपरिचित जल,स्थल आदि में प्रवेश न करें।

२६ न बुद्धि निन्द्रयाणामति भार माद ध्यात्—बुद्धि मन तथा इन्द्रियों पर अधिक भार न डाले।

३०—न चाति दीर्घ सूत्री स्यात्—दीर्घ सूत्री न बनें।

३१—न सिद्धो उत्सक गच्छेत, नासिद्धौ दैन्यम—सफलता में गर्व तथा असफलता में अधैर्य न दिखावे।

३२—प्रकृतिभी क्षण मास्मरेत्—अपने गुण, कर्म स्वभाव को न भूल उनके विपरीत आचरण न करें।

३३—नवीर्य आप्यात—वीर्य को दुर्व्यसनों में नष्ट न करें।

३४—नापवाद मनस्मरेत—अपनी निंदा व अपमान का स्मरण न करें।

उक्त सारे आदेश विषेधात्मक आचार के हैं, किन्तु चरक ने विधिपरक आचार भी दिए। उनका दावा है कि इन सिद्धान्तों पर चलने वाला न तो कभी रोगी होता है न कभी अकाल मृत्यु का ग्रास। विधि परक आचार की भी २४ बातों पर प्रकाश डाला गया है तथा १—सदैव ब्रह्मचर्य का पालन करो २—ज्ञानी, दानी एवं परोपकारी बनो, ३—सब पर करुणा करो। ४—सदा प्रसन्न रहे। ५—व्यर्थ का वादविवाद न करो। ६—अपनी इन्द्रियों तथा मन को शांत कर वश में रखो। ७—सायं प्रातः दोनों समय स्नान करो। ८—पैरों एवं गुह्य

स्वास्थ्य की रक्षा

मानवता का विकास कीजिए

हर क्षण प्रत्येक प्रकार की परिस्थिति का निर्भयता एवं साहस से सामना करने के लिए तैयार रहो। प्रातःकाल की मुस्कराहट से भरे सूर्य की भाँति सारे जगत को फूलों की तरह खिला दो। अपने सौंदर्य को शील एवं सौजन्य से उभारो। क्षण-भंगुर जीवन के अस्थिर व्यवहारों की छाप तो अमर ही होती है, उसे आनन्दमय बना दो। जब आप से कोई मिले तो उसे इतने अधिक आनन्द, ज्ञान एवं स्नेहानुभूति से अभिभूत कर दो कि वह सदैव आप से मिलने की चाह मन में बनाए रहे। मैत्री आखिर क्या है? जहाँ स्नेह अपरिमित हो तथा निरन्तर बढ़ता

ही रहे—स्नेह सीमित न हो—वही तो मैत्री का लक्षण है। संसार में मित्रों की कमी नहीं किन्तु जो स्वयं को किसी का मित्र नहीं समझता उसे भी कोई कोई मित्र समझेगा ? यदि आप हर व्यक्ति का मुस्कराहट के साथ स्वागत करने को अपने स्वभाव का अंग बना लेते हैं, यदि आप निरन्तर स्नेह, सेवा एवं सहानुभूति से अपने परिचय में आने वाले को मित्र बनाने को उद्यत हैं, तो निश्चित है कि सारा संसार आपका मित्र हो जाएगा। बजाए इसके कि हम आने वाले का काम कैसे टालें तथा उसे जल्दी से जल्दी कैसे खिसकाएं, यदि हमारा दृष्टिकोण यह हो कि हम हर आगन्तुक का कार्य जहां तक हो सके, वहां तक कैसे करें। हमारे द्वार आया हुआ व्यक्ति अपनी चिन्ताओं से मुक्ति पाकर एवं प्रसन्नता लेकर इस भावना से चले कि मौका लगे तो फिर मिले तभी हमारे मानव जीवन की सार्थकता है। मानवता मान करने, रूठने या दूसरों का काम टाल देने या बिगाड़ देने में नहीं है। मानवता तो स्वाभिमान करने, सेवा करने, सम्मान करने, खुशियां लुटाने तथा दूसरों का काम कर देने या बना देने में है। मानव का धर्म है मानवता, इससे बढ़ कर कोई धर्म नहीं बाकी तो सब सम्प्रदाय हैं, स्वार्थों बुद्धि का संश्लिष्ट एवं संकुचित दृष्टिकोण है, जीवन का सार तत्व है मानवता का प्रसार। मानवीय दृष्टिकोण से जब हम किसी तथ्य पर विचार करते हैं तो हमारा हृदय विशाल हो जाता है—हमारी चिन्तन प्रक्रिया में करुणा की धाराएं प्रवाहित होने लगती है। हमें चाहिए कि मनुष्य को गुण-अवगुणों का समन्वित स्वरूप समझ कर उसके हर पहलू पर गंभीरता से विचार करें। मनुष्य न तो देवता ही है जिसमें कोई दोष ही न हो, तथा न ही पूरा राक्षस है जिसमें दुर्गुण ही दुर्गुण भरे हों। हर व्यक्ति में गुण दोष समान रूप से निहित है। आवश्यकता इस बात की है कि हम दोषदर्शन से बचें तथा जहाँ तक बने गुणों का ही बखान करें। आवश्यकता पड़ने पर दोष भी दर्शाये जा सकते हैं किन्तु सामान्य स्वभाव दोषदृष्टि का नहीं होना चाहिये।

यह कितनी बड़ी विडम्बना है कि मनुष्य सोचता तो कुछ और

ग्रौर ही जाता कुछ और है। चाहता कुछ और है तथा करता कुछ और है। इस प्रकार के दुहरे व्यक्तित्व का परिणाम यही होता है कि मनुष्य सदैव अदिविध की स्थिति में ही रहता है। वह दृढ़ता से कुछ भी नहीं कह सकता कि अमुक कार्य वह कर सकेगा या नहीं। मानव व इतर प्राणियों में यही भेद तो महत्वपूर्ण है कि मानव संकल्प शक्ति से परिपूरित महान मनीषी है जब कि अन्य जीवों में यह निश्चय शक्ति तथा उसका दृढ़ता से पालन करने की क्षमता नहीं है। कुछ प्राणियों में—क्रोध, भय, मैत्री आदि भाव भी प्रसुप्तावस्था में रहते हैं, किन्तु मानव में जो शक्ति है उसका पार नहीं है। आवश्यकता इस बात की है कि मानव अपनी शक्ति को समझे। मानव अपने स्वरूप को समझे। मानव अपने स्वभाव को समझे। मानव अपने मूल को समझे। मानव अपनी मर्यादा को समझे। जिस का जन्म ही प्रेम का परिणाम है, जिसका निर्वाह एव पालण पोषण ही परोपकार एव ममता का प्रतीक है—वह यदि विश्व मानवता के लिए स्नेह, करुणा, दया, प्रेम एव अपनत्व दर्शा कर सदा सर्वदा सेवारत रहने का संकल्प करें तो इसमें अस्वभाविक क्या है? आवश्यकता है कि अपने स्वभाविक स्वरूप की साक्षात्कार कर के मानस से मैल की परतों को हटाया जाए। पाशविकता से मुक्ति पाने पर ही मानव का विकास हो सकता है।

लक्ष्य भेद के लिए हृदय से प्रयत्न कीजिए

जब घर में या आस पास आग लग जाती है तो सारे ही मोहल्ले को दौड़ना पड़ता है—जागना पड़ता है तथा बिना यह भेद भाव किये आग बुझानी पड़ती हैं कि यह घर किसका जल रहा है। इसी प्रकार जब दिल में आग लग जाती है तो सारे ही शरीर के अंग प्रत्यंगों को चिन्तातुर होकर दिल की लगी को बुझाने में भिड़ना पड़ता है। इसी प्रकार सारे शरीर में कहीं भी कोई घाव क्यों न हो, किंचित भी कष्ट क्यों न हो, बार बार मनुष्य का मन उसी से मुक्ति पाने का प्रयत्न में जुट जाता है।

यदि आप अपने खेत को सींचना चाहते हैं तो यह आवश्यक है कि नहर, कुआँ या तालाब से नाली इस प्रकार बनाएँ कि पानी सामान्यतः नीचे से धरातल की ओर बहे यदि धरातल ऊंचा है तो नाली गहरी करनी पड़ेगी। अन्यथा पानी पहुंचना कठिन हो जायेगा। इसी प्रकार यदि पानी पहुंचाने वाली नाली को बीच में ही दो तीन जगह काट दिया जाए तब उसका सारा प्रवाह शिथिल हो जाये। जल इधर उधर बहने लगे तो वह अपने गन्तव्य-स्थान तक कैसे पहुंच सकता है? जो व्यक्ति अपने निर्दिष्ट लक्ष्यों की पूर्ति की केवल चर्चा ही करते हैं तथा पूर्ति के लिए पूरी लगन से प्रयत्न नहीं करते, वे कभी भी निर्दिष्ट लक्ष्य तक पहुंच ही नहीं सकते। पथ भ्रष्ट या लक्ष्य-भ्रष्ट होकर जिस प्रकार पानी बेकार चला जाता है तथा फसल को सींच नहीं सकता उसी प्रकार जिस प्रकार मनुष्य का मन इधर उधर भटकता रहता है वह भी अपने निर्दिष्ट लक्ष्यों तक नहीं पहुंच सकता।

भ्रष्ट होने की अपेक्षा मृत्यु ही श्रेयस्कर है। व्यर्थ जीवन को मृग तृष्णा के जाल में फंसाकर डुबो देने की अपेक्षा जल्दी ही पिंड छुड़ा लेना अधिक हितकर है। एक एक क्षण आपकी अमूल्य धरोहर है। एक भी काम ऐसा न कीजिए जो आपको अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर होने में मदद न करें। समय ही तो वह सोपान है जिस पर चढ़ कर आपको अपने लक्ष्य तक पहुंचाना है। आज यदि आप यह सोचते है कि क्या हर्ज है अभी तो वर्षों जीना है दो चार दिन यदि ऐसा आराम से मौज में या व्यर्थ के गप्पे ठप्पों में खो भी दिये तो क्या होता है, किन्तु सच तो यह है कि यह सारा दिन तर्क बचकाना है बेबुनियाद है। माना कि आप को अभी बहुत अधिक जीना है, आपका स्वास्थ्य भी उत्तम है, साधन भी प्रचुर हैं तथा आज नहीं तो कल आप अपना मनचीता कर सकते हैं किन्तु क्या आपको इस बात का पक्का भरोसा है कि कल भी आपके विचार वही बने रहेंगे जो आज है। मनुष्य जब जटिल परिस्थितियों में घिर जाता है तो उलझनें कम होने का नाम नहीं लेती। परेशानियां जब समूह बना कर धावा बोलती हैं तो वह अच्छे अच्छे मनोबल रखने वाले प्राणी भी

है।

कौवा चले हंस की चाल

जब चोर भी अपने आपको साहूकार कहता है तथा डाकू भी महाजन का बोर्ड लगाकर भरे-बाजार में बैठता है तो आश्चर्य इस बात का होता है कि हम लोग जान बूझ कर भी काने को काना कहने की हिम्मत नहीं करते। जो व्यक्ति अपने कर्त्तव्य का पालन न करके, झूठे कागज भर के औरों की निगाहों में अच्छा बनना चाहता है, उसकी धाक कब तक बन सकती है ? बालू की नींव पर भी कहीं कोई प्रासाद खड़ा हुआ है ? मनुष्य सारी दुनिया को धोखा दे ले किन्तु क्या वह अपने आप को भी निरंतर धोखा देता रह सकता है। पाप का घड़ा एक न एक दिन तो भरता ही है। जीवन में खीज क्यों पैदा होती है ?

यदि आप अपने खेत को सींचना चाहते हैं तो यह आवश्यक है कि नहर, कुआं या तालाब से नाली इस प्रकार बनाएं कि पानी सामान्यतः नीचे के धरातल की ओर बहे यदि धरातल ऊंचा है तो नाली गहरी करनी पड़ेगी। अन्यथा पानी पहुंचना कठिन हो जाएगा। इसी प्रकार यदि पानी पहुंचाने वाली नाली को बीच में ही दो तीन जगह काट दिया जाए तथ. उसका सारा प्रवाह शिथिल हो जाये। जल इधर उधर बहने लगे तो वह अपने गतव्य-स्थान तक कैसे पहुंच सकता है? जो व्यक्ति अपने निर्दिष्ट लक्ष्यों की पूर्ति की केवल चर्चा ही करते हैं तथा पूर्ति के लिए पूरी लगन से प्रयत्न नहीं करते, वे कभी भी निर्दिष्ट लक्ष्य तक पहुंच ही नहीं सकते। पथ भ्रष्ट या लक्ष्य-भ्रष्ट होकर जिस प्रकार पानी बेकार चला जाता है तथा फसल को सींच नहीं सकता उसी प्रकार जिस प्रकार मनुष्य का म · इधर उधर भटकता रहता है वह भी अपने निर्दिष्ट लक्ष्यों तक नहीं पहुंच सकता।

भ्रष्ट होने की अपेक्षा मृत्यु ही श्रेयस्कर है। व्यर्थ जीवन को मृग-तृष्णा के जाल में आकर डुबो देने की अपेक्षा जल्दी ही पिंड छुड़ा लेना अधिक हितकर है। एक एक क्षण आपकी अमूल्य धरोहर है। एक भी काम ऐसा न कीजिए जो आपको अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर होने में मदद न करे। समय ही तो वह सोपान है जिस पर चढ़ कर आपको अपने लक्ष्य तक पहुंचाना है। आज यदि आप यह सोचते है कि क्या हुआ है अभी तो वर्षों जीना है दो चार दिन यदि ऐसा आराम में मौज में या व्यर्थ के गप्पे टप्पों में खोर भी दिये तो क्या होता है, किन्तु सच तो यह है कि यह सारा दिन तर्क बघदाना है बेबुनियाद है। माना कि आप को अभी बहुत अधिक जीना है, आपका स्वास्थ्य भी उत्तम है, साधन भी प्रचुर हैं तथा आज नहीं तो कल आप अपना मनचीता कर सकते हैं किन्तु क्या आपको इस बात का पक्का भरोसा है कि कल भी आपके विचार वही बने रहेंगे जो आज है। मनुष्य जब जटिल परिस्थितियों में घिर ·

है तो उलझनें कम होने का नाम नहीं लेती। ·

कर धावा बोलती हैं तो वह अच्छे अच्छे मनो

कुछ प्रश्न

हम अपने आप को कब तक भुलावे में डालते रहेंगे। कब तक हम गन्दी अवस्था को छिपाते रहेंगे? कब तक हम आंकड़ों के जाल एवं प्रभावपूर्ण प्रगति—रिपोर्टों से संसार को भ्रम में डाले रहेंगे? जो हम हैं नहीं—वह हम बनें या बनने का प्रयत्न करें तब तो ठीक है, किन्तु व्यर्थ ही हम अपने आप को बहुत बड़ा मानें तथा अपने आचरण को सुधारें नहीं तो हमारा पतन ही तो सुनिश्चित है। हमारे जीवन के हर पहलू को, हमारे मानस के हर विचार को, हमारे आचरण के हर स्वरूप को हमें निष्पक्षता से देखना ही होगा। मन के मूल में गहरी छाई दुष्प्रवृतियों को जब तक जान बूझ कर दूर नहीं किया जाता तथा सदाचारमय सद्-प्रवृत्तियों को जब तक सोच समझ कर अपनाया नहीं जाता, विकास एवं प्रकाश का मार्ग प्रशस्त ही नहीं हो सकता।

क्या हम लोग आज बस एक प्रकार के कृत्रिम जीवन को अपना कर के झूठे आत्मसन्तोष की मदिरा नहीं पी रहे हैं ? यह एक सोचने की बात है कि आज सौम्य नागरिक चोरी, झूठ एवं मक्कारी के पथ पर क्यों अग्रसर है ? हैरत तो यह देख कर होती है कि नवजवान भी इसी पतन के पथ पर बिना किसी हिचक के बढ़ते जा रहे हैं ? कब तक चलता रहेगा यह सर्वनाशी पाश्चात्यता, पतन का कर्म जो निरन्तर भारतीय समाज की जड़ों को खोखला करता जा रहा है ।

जिम्मेदार एवं विश्वसनीय व्यक्ति भी जब झूठ बोलकर अपना काम बनाते हैं तथा आपको अन्धकार में रखते हैं तो ऐसा लगता है मानो किसी ने विष ही दे दिया है और वह भी ऐसा जिसे पीकर आदमी केवल मरे ही नहीं शेष सब कुछ हो जाए, यन्त्रणायें—मानसिक एवं शारीरिक—बढ़ती ही रहें, तो कब तक चुप्पी साधे बैठा रहा जाए, यह तो नहीं कह सकते कि जमाना बदल गया है अतएव मनुष्य भी अपने मूल्यों को बदल दे तथा येन केन प्रकारेण अपना काम बनाना ही जीवन का सबसे बड़ा ध्येय बना ले । नैतिक मूल्य तो निष्ठा पर निर्भर है ।

बाहर से सौजन्य, मैत्री एवं बन्धुता, ऊपरी आतिथ्य सत्कार तथा अन्दर भयकर द्वेष-भावना, किसी भी तरह मार गिराने या पछाड़ने की कूटनीति ही तो आज का जन-जीवन या सार्वजनिक कार्यक्षेत्र है । आंखें होते हुए लोग सूरदास बनते है । जान बूझ कर गलती करते हैं तथा फिर कहते हैं कि अमुक ने हमारा नुकसान कर दिया । अमुक खराब है आदि । आवश्यकता तो इस बात की है कि मनुष्य अपने आप को समझे, परखे एवं सुधारे, यदि वह ऐसा नहीं कर सकता तो जब अन्य लोग आपके दोषों को खोज निकालते हैं तो उनके प्रति रोष क्यों प्रकट करते हो । बड़ी बड़ी बातें बनाने या लम्बी चौड़ी डींग हांकने से होता ही क्या है—सच तो यह है कि हम अपने आपको देखने की क्षमता ही अपने आप में पैदा नहीं कर पाए । हमारी सारी शक्ति

आतमा की आवा

क्या हम में किसी भी कार्य को समय के पूर्व कर देनेकी क्षमता का विकास हुआ है ? क्या हम समय का पूरा पूरा ध्यान रखते हैं तथ किसी भी सार्वजनिक कार्यक्रम को ठीक समय पर प्रारम्भ कर पाते हैं। क्या हम कलुषित वासना पूर्ण दृष्टि से तो संसार के धन, सम्पदा एवं स्त्रियों की ओर अवसर लगते ही चुपचाप नहीं ताकते रहते हैं। क्या हम बार बार जाग कर भी पुनः आलस्य, निन्द्रा एवं प्रमाद के शिकार नहीं हो जाते ? क्या हमने अपने दैनिक जीवन से नियमितता को सदाके लिये तिलाजली नहीं दे दी है ? प्रातः जल्दी उठना, उपासना तथा शुद्ध वायु का सेवन हमें कितना कठिन लगता है ? कुछ क्षण अपने बच्चों या परिवार के सदस्यों के साथ बैठकर सदाचार प्रधान ज्ञान की कहानियाँ सुनाने का हमें अवकाश ही कहां है ? दिन रात हम कोल्हू के बैल की तरह उदर पोषण के चक्कर में व्यस्त रहते हैं तथा शायद ही ऐसा कोई समय आता हो जब हम निश्चितता से कह सकें कि अब हमें फुरसत है—अवकाश है। तो ऐसे व्यक्ति जो अपने जीवन का कोई लक्ष्य निर्धारित नहीं कर पाते जो कि कर्त्तव्य-विमूढ होकर जो कुछ जैसा मिला से लिया जो कुछ किया जैसा किया, सब कुछ समय की बात है——जैसा जिन्हें मौका मिला वह वैसे बन गए आदि की विचारधारा पनपाते है—वे जब अपना ही उत्थान नहीं कर पाते तो परिवार, समाज एव राष्ट्र का क्या विकास करेंगे। भूल चाहे छोटी ही क्यों न हो हमें तो उससे अपने आप को मुक्ति दिलानी ही पड़ेगी। आज चारों ओर भय, शंका, अविश्वास, एवं घृणा के बादल मंडरा रहे हैं। मानव मानव को धोखा देने में लिए आतुर है। ऊपर से चाहे जितना सौजन्य स्नेह, एव आत्मीयता का प्रदर्शन किया जाए किन्तु अन्दर ही मन जिस कुटिलता से वह पीड़ित है उसे उसके सिवाय और कोई नहीं जानता है। इस प्रकार की परिस्थिति से छुटकारा पाऐ बिना वैसे तो व्यक्ति का विकास होगा नहीं, कैसे राष्ट्रोत्थान होगा? हमारे जीवन में नियमितता नहीं, प्रामाणिकता नहीं, चरित्र एवं कर्त्तव्य-
[illegible]

सामाजिक एवं नैतिक मूल्यो का संतुलन व्यक्तित्व स्वार्थसिद्धि के लक्ष्यों के साथ हो नही पा रहा है। फलत: मानव एकांगी बन कर दिग्भ्रमित हो रहा है। ईश्वर के सर्वश्रेष्ठ पुत्र मानव को विज्ञान के सर्वोत्कृष्ट साधन पाकर भी यह स्थिति होगी, मानसिक दृष्टि से वह इतना पंगु हो जाएगा बौद्धिक दृष्टि से वह इतना दुर्बल हो जायेगा, नैतिक दृष्टि से वह इतना निकृष्ट हो जायेगा कि दिन रात अर्थ के चक्कर मे अनर्थ करता रहेगा, स्वार्थ एव अहं का शिकार होकर सारी दुनिया मे विष बीज फैलाऐगा— ऐसा किसी ने स्वप्न मे भी नही सोचा होगा किन्तु सवाल इस बात का नही है कि हम क्या सोचते है, तथा क्या कहते हैं। किन्तु सवाल तो इस बात का है कि आखिर हम करते क्या हैं, चारो ओर अतृप्त एव अनियमितता, उच्छृंखला एव अनैतिकता, नास्तिकता एव अनास्था का वातावरण व्याप्त होता जा रहा है —— नई पीढ़ी को इन पुराने मूल्यो का महत्त्व कौन समझाएगा ? ऐसे अनेक प्रश्नो का उत्तर मानव को देना ही है ?

व्यक्ति पूजा

इस देश मे लोग व्यक्ति पूजा के लिये जितने लालायित रहते है उतने व्यक्ति के आदर्शो का जीवन मे उतारने के लिये नही। राम कृष्ण, गौतम, महावीर, गुरु गोबिन्द सिंह, महात्मा गांधी एव जवाहर लाल की प्रतिमाएं बनाकर उनकी पूजा करने मे हम जितनी रुचि लेते हैं, उसका एक सहस्रांश भी यदि उनके सिद्धान्तो, कार्यों एव निर्देशों पर चलने पर लगाते एक नेता को हम भाग्य सूद कर मानते है तथा जब वह नेता नही रहता है तो घोर अन्धकार का अनुभव करते है। उत्तराधिकारी नेता चाहे पूर्वगामी नेता से उत्कृष्ट एव श्रेष्ठ ही क्यो नहो किन्तु लोगो मे ऐसी प्रवृत्ति रही है कि उसकी कमियो, त्रुटियो एव दोषो की ओर ही दृष्टि डालेंगे। उसकी जिव्हा पर तो पुराने महापुरुषो का ही जिक्र रहेगा तथा वर्तमान के प्रति गहरी उपेक्षा का भाव भरा रहेगा।

देशों को [illegible] बनाने की जो प्रवृत्ति [illegible] कुर्सी पर [illegible] जा रही है उससे पीढ़ियों का [illegible] है। [illegible] राष्ट्र के नागरिकों की मनोवृत्तियों, प्रवृत्तियों एव [illegible] की गौरवपूर्ण एव स्पृहणीय होना चाहिए। किन्तु [illegible] केवल [illegible] शासन, [illegible] एव [illegible] की प्रवृत्तियाँ ही दिन प्रति दिन प्रबल होती जा रही है ? आवश्यकता इस बात की है कि हम समय रहते चेतें। कहीं ऐसा न हो कि हम अपने घर के झगड़ों में उलझे रहें और कोई विदेशी घात लगाकर हमारी आजादी पर हावी हो जाये। अभी घोर भयकर एव भीषण [illegible] में [illegible] रहे हैं किन्तु [illegible] है कि [illegible] एव व्यक्तिवाद को बढ़ावा देने में लगे हैं। एक बार [illegible] कुर्सी को कोई छोड़ता नहीं है—छोड़ना चाहता भी नहीं है—विधि व विधान में सशोधन करके मृत्यु पर्यन्त ही कुर्सी पर जमा रहना चाहता है, [illegible] प्रतिमा बनता जा रहा है।

मृदु भाषण

मनुष्य की पहचान उसकी वाणी से होती है। जो जितना मीठा, मधुर एव सरल बोल बोलता है, वह उतना ही अधिक अपने पर्यावरण में लोकप्रियता प्राप्त करता जाता है, इसके विपरीत कटु वचन बोलने वाले के शत्रुओं की सख्या निरन्तर बढ़ती जाती है। यदि आप क्रोध के शिकार हैं, आवेश में हैं तो अच्छा है कुछ देर बिलकुल न बोलें, क्योंकि क्रोध मानव का पशु बना देता है। कहते हैं कालिदास प्रारम्भ में महामूर्ख था, किन्तु पडितों के सकेत से वह मौन रहा तो अति विद्वान विद्योत्तमा को परास्त कर सका। यदि वह बोल पड़ता तो उसकी सब पोल खुल जाती। शास्त्रकार कहते हैं 'सत्य ब्रुयात् प्रिय ब्रुयात, मा ब्रुयात सत्य अप्रियम्।' सत्य बोलो, प्रिय बोलो किन्तु अप्रिय सत्य मत बोलो तात्पर्य है कि वाणी पर सयम रखना सामाजिक जीवन में सफल होने के

लिए नितान्त आवश्यक है । वस्तुत. कभी कभी छोटी सी बात ही सारे जीवन के लिये खतरा उत्पन्न कर देती है। मफल जीवन की आकांक्षा रखने वालो को चाहिए कि वे औरो की समस्याओ को जानने का अधिक से अधिक प्रयत्न करें—सुने अधिक, बोले कम और जो कुछ भी बोलें, उसे बहुत ही सोच समझ कर बोले। किसी कवि ने कितना सुन्दर कहा है

> 'शब्द सभारे बोलिए शब्द के हाथ न पाव
> एक शब्द करे औषधी एक शब्द करे घाव

मुह से निकला हुआ बोल तथा धनुष से निकला हुआ तीर किसके चाहने से लौट सकते है ।

अतएव हमारे जीवन का सिद्धान्त यह होना चाहिए कि दूसरा यदि अपने मुखारविन्द से चाहे जितने अपशब्दो की बौछार क्यों न करे हमे अपना मृदु-भाषण एव नम्रता का पथ त्यागना नहीं चाहिए। कहते हैं :—

> 'कौआ किसका धन हरे कोयल किसको देय
> जीभड़ली अमृत भरा जग अपना कर लेय।'

अतएव आवश्यकता इस बात की है कि हम जीवन मे मृदु भाषण एव मुस्कराहट के महत्त्व को समझें । हमारा हर कार्य, हर व्यवहार, हर आचरण केवल सामने वाले पर ही नही अपितु अपने आप पर भी संस्कार छोडता है। सौजन्य एव सदाचार जहा एक ओर प्रसन्नता की सृष्टि करते है वही दुर्जनता, अपशब्द एव व्यर्थ का कलह दुःख की सरिता बहा देती है। आप चाहे अत्यधिक विद्वान हो, चाहे निरक्षर भट्टाचार्य हो किन्तु यदि आपको बोलना नही आता तो सचमुच आप जीवन का सच्चा आनन्द नही ले सकते । शिष्टाचार आखिर है ही क्या ? संभाषण मे मृदुता, विनम्रता एवं प्रफुल्लता ही तो शिष्टाचार का प्रथम सोपान है। कहते हैं जब सन्त या महापुरुष बोलते हैं तो फूल झरते हैं—वाणी के सौरभ से श्रोताओ के हृदय कमल खिल-खिल जाते हैं, कर्ण कुहरों

आनन्द की सरिता प्रवाहित होने लगती है। इसी बात को यों भी कह सकते हैं कि जो व्यक्ति जीवन के हर प्रसंग मे प्रसन्नतापूर्वक मृदुशब्दों का प्रयोग करके सन्तोष-प्रधान व्यवहार करते हैं वही वास्तव में महात्मा कहलाते हैं। किसी भी प्रकार की परिस्थितियों मे मृदु भाषण एवं विनम्रता का साथ मत छोड़िए। ये ही जीवन को कल्मष रूपी नर्क से निकाल कर स्वर्ग को पहुचाने वाले मार्गदर्शक हैं। वैतरणी पार करने के लिए चाहे आप गऊदान करें या न करें, किन्तु यदि आपने जीवन मे विनम्रता, सज्जनता एवं मृदु भाषण की आदत डाली है यदि मुस्कराहट आपके अधरो पर सदा नृत्य करती है, तो जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे आपकी सफलता सुनिश्चित है। जीवन की हर समस्या को हल करने की क्षमता मृदुभाषण मे ही है।

दुःख या सुख

आप दुःखी क्यों है ? जग को ऐसा कोई दुःख नही है जिसे आप दूर न कर सके ? आपकी अपनी समस्याओं का, झंझटो का हल आपके ही पास है-आप क्यों व्यर्थ डाक्टर, वैद्य, हकीम, सयाने, संत, पीर, पैगम्बर के चक्कर मे अपना अमूल्य समय नष्ट कर रहे हैं ? आखिर सुख व दुःख मन की स्थितियों का ही तो नाम है। जो कार्य एवं वातावरण आप को आनन्द देता है उसमे आप सुख की कल्पना करते हैं तथा जो परिस्थितियां प्रतिकूल हो जाती हैं उन्हे आप मार-रूप दुःख का कर्ता मान लेते हैं। यदि आप इस दृष्टि से विचार करें कि संसार मे आप से भी अधिक गई गुजरी हालत के लोग कितने हैं तो शायद आपको अपनी सच्ची स्थिति का परिचय हो तथा आप यह जान कर प्रसन्न ही होंगे कि ईश्वर की आप पर इतनी भारी कृपा है कि आप राष्ट्र के सहस्रों नर नारियो से उत्तम स्थिति में हैं। मनुष्य के समस्त दुःखो का कारण उस की ना समझी ... ग्याही है जब वह जानता है कि अधिक खाने ... रती

लिए नितान्त आवश्यक है । वस्तुतः कभी कभी छोटी सी बात ही सारे जीवन के लिये खतरा उत्पन्न कर देती हैं। सफल जीवन की आकांक्षा रखने वालों को चाहिए कि वे औरों की समस्याओं को जानने का अधिक से अधिक प्रयत्न करें—सुनें अधिक, बोलें कम और जो कुछ भी बोलें, उसे बहुत ही सोच समझ कर बोलें। किसी कवि ने कितना सुन्दर कहा है

> 'शब्द सभारे बोलिए शब्द के हाथ न पाव
> एक शब्द करे औषधी एक शब्द करे घाव

मुंह से निकला हुआ बोल तथा धनुष मे निकला हुआ तीर किसके चाहने से लौट सकता है।

अतएव हमारे जीवन का सिद्धान्त यह होना चाहिए कि दूसरा यदि अपने मुखारविन्द से चाहे जितने अपशब्दों की बौछार क्यों न करे हमे अपना मृदु-भाषण एव नम्रता का पथ त्यागना नहीं चाहिए। कहते हैं :—

> 'कौआ किसका धन हरे कोयल किसको देय
> जीभड़ली अमृत भरा जग अपना कर लेय।'

अतएव आवश्यकता इस बात की है कि हम जीवन मे मृदु भाषण एव मुस्कराहट के महत्त्व को समझें। हमारा हर कार्य, हर व्यवहार, हर आचरण केवल सामने वाले पर ही नहीं अपितु अपने आप पर भी संस्कार छोड़ता है। सौजन्य एव सदाचार जहां एक ओर प्रसन्नता की सृष्टि करते हैं वहीं दुर्जनता, अपशब्द एव व्यर्थ का कलह दुःख की दरिया बहा देती है। आप चाहे अत्यधिक विद्वान हों, चाहे निरक्षर भट्टाचार्य हों किन्तु यदि आपको बोलना नहीं आता तो सचमुच आप जीवन का सच्चा आनन्द नहीं ले सकते। शिष्टाचार आखिर है ही क्या ? संभाषण मे मृदुता, विनम्रता एवं प्रफुल्लता ही तो शिष्टाचार का प्रथम सोपान है। कहते हैं जब सन्त या महापुरुष बोलते हैं तो फूल झरते हैं—वाणि के सौरभ से श्रोताओं के हृदय कमल खिल-खिल जाते हैं, वर्ण

से, अधिक जानने से तथा अधिक भोग विलास करने से रोग का ही शिकार होना है तो भी यह बिना मनन चिन्ता किए इन में इतना अधिक उलझ जाता है, ऐसी ही संगति मिल जाती है ऐसे ही अवसर आ जाते हैं कि वह निरन्तर दुःख एवं पतन के मार्ग में भटक जाता है और फिर सिर पर हाथ धर कर रोता है कि हाय हमारे दुःख दूर करो।

जब तक मानव अपने मन का उपयोग मनन करने में नहीं करता तब तक उसे मुनि नहीं कहा जा सकता। यह मानव का विशेष धर्म है कि पहले चिन्तन करे, मनन करें, विवेक बुद्धि की कसौटी पर कसे तब कोई काम करे। पशुओं की तरह जो मिला सो सही जो दिखा सो सही की आदत तो छोड़नी ही होगी। जब तक समय चक्र बना कर जीवन के प्रत्येक क्षण का उपयोग रचनात्मक प्रवृतियों में नहीं किया जाता। हम एक स्वतन्त्र राष्ट्र के जिम्मेदार नागरिक होने का दावा कैसे कर सकते हैं। केवल गप्पें ठोकना, परनिंदा में रस लेना तो कोई काम है ही नहीं। काम वह है जो उत्पादक हो तथा राष्ट्रीय सम्पत्ति में वृद्धि करे। सच बात तो यह है कि आपको अपनी शक्ति का अभी तक पता ही नहीं है, न आपको यह ही विदित है कि आपके पास ईश्वर ने कैसी अनोखी धरोहर रख रक्खी है—आप ने अपनी सर्व श्रेष्ठ वस्तु को तो कूड़े कचरे में डाल रक्खा है तथा औरों की सड़ी से सड़ी वस्तुओं की ओर ताकते रहते है। क्या आप ने कभी विचार किया है कि ज्ञान का कितना बड़ा भंडार आप के घर में पड़ा है ? आपके आस पास कितने अलभ्य रत्न बिखरे पड़े हैं, जिनकी कीमत रुपयों में नहीं आँकी जा सकती, किन्तु आप हैं कि उनकी ओर तो निहारते भी नहीं तथा व्यर्थ ही दुनियाँ की अन्य तृष्णाओं में उलझे रहते हैं। जो कुछ है उसी को सजाओ सवारो—देखते ही देखते आप के सारे दुःख छूमन्तर हो जाऐंगे तथा सुख की बगिया हरी हो उठेगी। आप अपने को जगा देंगे। अपने आप को पहचानिये तो सही—आप क्यों व्यर्थ रत्न छोड कर कंकड की लालसा लगाये बैठे हैं। विद्वान पंडित होकर भी बच्चों की तरह क्यों रोते हैं—घिघियाते हैं। याद रखिये 'तुलसी जस भवितव्यता तैसी मिले सहाय'

..✓ आत्मा की आ . ज..

अतएव जो होना है वह तो होता है ही, व्यर्थ ही उसकी चिन्ता न करते हुए मानव का कर्त्तव्य है कि कर्त्तव्य-कर्म की पूर्ति के लिए निरन्तर पुरुषार्थ करता रहे। दुःख को ही यदि हम सुख समझ लें तो फिर दुःख ही क्या रहे। संत कबीर कहते हैं :—

'सुख के माथे सिल पड़े नाम हरि को जाय
बलिहारी है दुःख की पलपल नाम रटाय' क्योंकि
दुःख में सुमिरन सब करे सुख में करे न कोय,
जो सुख में सुमिरन करे तो दुःख काहे को होय।

आत्म शुद्धि—युग की मांग

जिसे देखना ही नहीं चाहिए उसे तो देखते हो, और जिसे दिन रात देखना चाहिए उसे भी नहीं देखते। आखिर आप की यह हालत कैसे हो गई है? आपके नेत्र इस लिए बने हैं कि आप सद्‌ग्रन्थों का अध्ययन करो। सामने के पथ को देखो तथा सद्-असद् विवेक को जगाओ इसलिये नहीं कि निरन्तर अपनी ही माता बहिनों को कुदृष्टि से घूरते रहो, ताकते रहो। संसार के सौन्दर्य, सम्पत्ति एवं विशाल सुखों की लालसा की दृष्टि से देखने से ही तो वे आपको प्राप्त नहीं हो सकते, तो फिर क्यों व्यर्थ अपना समय, धन, एवं शक्ति को क्षीण कर रहे हो। कैसी विडम्बना है कि आप लोहे से उम्मीद रखते हैं कि उसमें फूल खिलेंगे, निर्झर झरेंगे। अन्धकार से आपको आशा है कि वह आपको प्रकाश देगा।

दृढ़ता से निश्चय करो और औरों के दोष देखने की अपेक्षा अपने ही दोष देखने की आदत डालो ताकि उनका निराकरण स्वयं ही किया जा सके तथा आगे न करो अधिक ध्यान कर बचा जा सके। औरों का दोष-दर्शन करने से, पर छिद्रान्वेषण करने से आप उन्हें दूर तो कर ही नहीं सकते, हां व्यर्थ उनका अपना शत्रु अवश्य बना लेंगे। इसका लाभ किसको होगा, न आपको और न ही उन्हें। इसके दोष-

दर्शन से आप अपने अन्तर के उन कोष का पता लगा सकेंगे जिसमें अनन्त रत्नों का भण्डार भरा जगमगा रहा है किन्तु आपकी अपनी गन्दी आदतों के कारण वह आपको ही दृष्टि गोचर नहीं हो पा रहा है ? यह कितना बड़ा भ्रम है कि आप चोरी करते हैं, झूठ बोलते हैं, धोखा धड़ी करते हैं और समझते हैं कि आप धनवान बन रहे हैं—आप समृद्धिशाली बन रहे हैं और यदि कोई आप पर शंका या संकेत भी कर दे तो आप चीख पड़ते है कि कौन कहता है, किसने देखा हमें गलत काम करते हुए ? किस की हिम्मत है जो हमसे लोहा ले तथा बिना प्रमाण हम पर इस तरह से लाछन लगाए ? किन्तु आप स्वयं मन ही मन जानते हैं कि आप कितने कमजोर हैं ? अपना काम बनाने के लिए आप क्या नहीं कर रहे । एकात स्थल मे बैठकर आप कितने कलित एव कितने गर्हित विचारो को पालते रहते है ? कभी सोचा है आपने ? आपके मानस मे अनीति के कितने अनर्गल विचार भरे पड़े हैं ? सोचिये तो सही ! तृतीय श्रेणी मे यात्रा करके प्रथम श्रेणी का किराया चार्ज करना क्यो चाहते हो ! झूठा भ्रमण दर्श कर भता कमाने की नीच कामना को मन मे क्यों स्थान देते हो ? क्या इस प्रकार कमाया हुआ पैसा आपको सदा सदा के लिए पतन के गर्त मे नही गिरा देगा। "कहते हैं "चोरी का धन मोरी जाय तथा पापी का धन परले लाय ।" इस कहावत मे शत प्रतिशत सचाई है। देर है, अन्धेर नही हैं। आज सारे राष्ट्र में एक दूसरे को लूटने की जो प्रवल प्रवृत्ति बढ़ रही है, उससे तो आपको बचना ही होगा। क्या एम० एल० ए० और क्या एम० पी० क्या गैजटेड आफीसर और क्या मत्री, सभी के सभी झूठी रसीदें लगाकर, झूठे बिल बनाकर सरकारी खजाने से अपने हित के लिए रकम धड़ाके से निकालने मे नही लजाते। यह सब तो इन लोगो ने अपना अधिकार मान रक्खा है। तो यदि सरपच पच आने दो आने दो आने की चोरी करे तो कौन सी बुरी बात है। कहां तक कहें, स्टेशन एव थानो की बोलियां लगती है, अमुक स्टेशन 500) रु० रोज दिलाता है, अमुक

वानों का जेब गर्म कर सकता है वही इन स्थानों पर पहुँचता है तथा प्रसाद चढ़ा चढ़ा कर नित्य प्रति बार बार खाता है। यह सब इस लिए हो रहा है कि हम लोगों ने राष्ट्रहित की तरफ तो देखना ही छोड़ दिया है। दिन रात हमें अपने ही हितों की चिन्ता बनी रहती है। अपना लाभ सोचते रहते हैं, कहीं से कोई मुर्गी फसाने के स्वप्न देखा करते हैं किन्तु कभी भी अपने मन के मैल को धोकर साफ नहीं करना चाहते— क्यों करते? यह कब तक चलेगा। ऐसा चलना नहीं चाहिए। इसके लिए व्यापक रूप से आत्मशुद्धि का सकल्प करना होगा, यही युग की मांग है।

महात्मा की कामना

मनुष्य को जब बार बार अतप्रेरणा होती है कि मैं जो काम कर रहा हूं उस से भी बड़ा कोई काम है-एक ऐसा महान कार्य जो शायद मैं ही कर सकता हू, तथा मेरे सिवाय किसी अन्य से यह काम हो ही नहीं सकता, तथा जब बार बार हृदय में यह अनुगूंज होने लगती है कि मेरा जन्म उस महान कार्य के लिए ही हुआ है, मैं व्यर्थ ही अपने सीमित स्वार्थ में फस कर अपनी अन्तरात्मा की हत्या नहीं होने दूंगा—तो क्या ऐसा मनुष्य अधिक समय तक अपने सीमित दायरे में रह सकता है? गौतम बुद्ध को किसने कहा था कि यह राज पाट, सुख वैभव त्याग कर जगलों की खाक छाने। महावीर स्वामी को किसने उत्प्रेरित किया कि वह राजसी सुख-वैभव को त्याग कर दिगम्बरी साधना करें। ईसा मसीह को सूली पर लटकने की प्रेरणा किसने दी? मोहम्मद साहब को सत्य के प्रचार के लिए समस्त विरोधों का सामना करने की शक्ति किसने दी? गांधी जी को गोली खाकर भी हे राम! की क्षमापूर्ण ध्वनि गुंजरित करने के लिए किसने प्रेरित किया।

जन्म जन्मान्तरों से योग साधना करती हुई उत्कृष्ट आत्माएं ना कुछ कारणों से किंचित प्रलोभनों से भ्रष्ट होती है तथा दूसरे जन्म में पुनः सुसयोग पाकर योग साधना में रत हो जाती है। जीवन के चरम आत्मा की आवाज

ध्येय की प्राप्ति और निर्वाण या मोक्ष की आराधना ही तो ऐसे महापुरुषों के जीवन यात्रा का उद्देश्य होता है। चराचर जगत के हर जन्तु किन्तु न आत्मीयता दर्शाते हुए ये लोग परोपकार में ही अपना जीवन खपा देते हैं। समाज से कम लेना तथा समाज को अधिक से अधिक देना, जितना दिया जा सके उतना अधिक देना, तथा केवल वही देना जिसके बिना जीवनचर्या चलाना ही कठिन हो, ऐसे सत्पुरुषों, महापुरुषों या सन्तों का स्वभाव हो जाता है। ऐसा क्यों होता है ? क्यों एक व्यक्ति सब कुछ छोड़कर, जीवन के सारे सुख साधन छोड़कर तथा अब तक के समस्त स्वजनों को छोड़कर, किसी अपरिचित की शरण में सदा सदा को जाना चाहता है। क्यों कोई अपना काम धाम छोड़कर दौड़ा दौड़ा किसी का दुःख दूर करने के लिए हजारों मील की दूरी को पार कर बरबस जाता है तथा उसके सुख में ही अपना सुख समझता है। औरों के दुःख दूर करने में जो आनन्द आता है औरों को सुख पहुंचाने में जो आनन्द आता है उसकी समता तो इन्द्रलोक के सुख से भी नहीं की जा सकती। जैसे कामी को स्त्री अंग प्रत्यंग में सुख का आभास होता है तथा जैसे कामी टकटकी लगाये निरन्तर पपीहे की तरह कामिनी की ओर देखा करता हैं तथा उसके अंगों की विभिन्न चेष्टाओं से आनन्द की संपूर्ति प्राप्त करने लगता है—उसके हर इशारे पर प्रफुल्लित होता हुआ वाह वाह की झड़ी लगा देता है तथा अवसर आने पर न रात देखता है न दिन, न धर्म देखता है न कर्म, न जात देखता है न पात, किन्तु अन्धे की तरह, कोल्हू के बैल की तरह, स्वान की तरह कामिनी का पीछा करता है तथा येन केन प्रकारेण उसकी देह को पाने का पूरा पूरा प्रयत्न करता है और ऐसा करते हुए वह सारे संसार को भूल जाता है—उसके सामने केवल अपनी प्रेमिका का ही चित्र होता है—उसे सिवाय उसे कुछ भी तो दिखाई नहीं देता, उसी प्रकार जब मनुष्य अपने लक्ष्य के लिए, परोपकार, पुण्य एवं सेवामय उत्सर्ग के लिए निशिवासर चिन्तन करता रहता है, यथा साध्य प्रयत्न करता है तथा जीवन का सबसे बड़ा सुख, स्वर्ग का सुख, मोक्ष का आनन्द उसी में प्राप्त करने की धुन सिर पर

—— के नायाज

बढ़ा लेता है तब ही तो मुक्ति का शुभ पथ प्रशस्त होता है। तभी तो आत्म-कल्याण का सर्वोपरि आनन्द-कानन उसे उपलब्ध हो पाता है। तभी तो कल्प वृक्ष उसके घर-आंगन में फलता फूलता है। तभी तो कामधेनु उसके उपवन में अमृत की पयस्विनी प्रवाहित करती है। तभी तो इन्द्र स्वयं इन्द्रासन छोड़कर उसके चरणों में आता है। तभी तो देवता एवं ऋषि उसके आनन्द से ईर्ष्या करने लगते हैं और वह इन सबकी उपेक्षा करके प्रभु से यही प्रार्थना करता है कि

'त्वहम् कामये राज्यं न स्वर्गं न पुनर्भवम्
कामये दुःखतप्तानां प्राणिनां आर्तिनाशनम्'

मैं राज्य की कामना नहीं करता, मुझे स्वर्ग नहीं चाहिए, मुक्ति की गोद में मजा कौन सा है। हे दीनबंधु मुझे तो यही वर दीजिए कि मैं दीनों के दुःखों का दमन करता रहूं।

काल की घड़ी

कितनी जल्दी समय व्यतीत जाता है, इसकी आप कल्पना नहीं कर सकते। अभी अभी शाम थी और अभी रात हो गई। यदि हम समय का हिसाब न रखें तो यह देख कर आश्चर्य होता है कि कितनी तीव्र गति से व शीघ्रता से समय का चक्र चलता ही रहता है। शैशव हंसते खेलते निकला, किशोरावस्था गिनते कूदते निकली, यौवन उछल-कूद किया करते काम का दाम बना कमाने खाने में गुजर गया और बुढ़ापा खिसियाते हुए बकझक करते निकल गया और यमराज द्वार पर आकर खड़ा हो गया। प्राणों को फांस में डाल कर ले जाने के लिए। कितना असहाय है मनुष्य-मात्र के हाथों उसे जीवन को छोड़ना ही पड़ता है। जीवन का कोई ठिकाना भी तो नहीं है। आज यहां बैठे हैं—अभी हंस खेल रहे हैं, और पता नहीं दो घंटे बाद क्या हो जाएगा। प्राण पखेरू उड़ते कितनी देर लगती है। सारा संसार, सारा परिवार सारी मोह ममता, सारा बन्धन यहीं रह जाता है—[illegible] यह [illegible] शरीर देह, जिसे हम रोज नहलाते, धुलाते, [illegible] सुन्दर-

हम बनाने का प्रयत्न करते हैं, भी यहीं रह जाता है और इसे अपने ही संगी साथी चिता पर चढ़ा देते हैं। यह है उस देह की अन्तिम परिणति जो किसी दिन पूरे परिवार की खुशी का कारण बना था। जिसके आगमन पर थाली बजी थी, बताशे बटे थे, देवी देवताओं की मिन्नतें की गईं थी तथा कथा कराई गई थी, ब्रह्म भोज कराया गया था, आखिर इस देह में ऐसा वह कौन सा तत्व है जो मनुष्य को ज्योतिपुरुष बनाता है, वह कौन सी अनोखी वस्तु है जो मनुष्य को मनुष्य कहलाने में योग देती है। निष्प्राण देह की तो कोई कीमत सचमुच ही नहीं है। है। प्राण का स्पन्दन, मस्त एव व्यस्त रखने का सामान ही तो प्राणायाम है। जब तक मनुष्य मन, वचन, कर्म से शुद्ध नहीं रहता तब तक प्राण जाग्रत नही होता, और निष्प्राण व्यक्ति जीते जी भी मुर्दे के समान है।

मनुष्य कब तक एक दूसरे को झांसा देता रहेगा। एक न एक दिन तो पोल खुलेगी ही। अतएव आवश्यकता इस बात की है कि अभी से पोल से पिंड छुड़ाया जाए। ऐसे आवरण को गले ही मत लगाओ जो पाखड की कोटि में आता हैं। अपने आप को सजा कर कब तक कौआ हंस की चाल चलता रहेगा ? अपनी स्थिति को हर आदमी जितनी अच्छी तरह से जानता है उतना कोई अन्य नही जानता। लेकिन कितना आश्चर्य है कि मनुष्य जान बूझ कर भी सही स्थिति को सामने नही रखता। हर बार नित नवीन चर्चा करता है, नित नवीन बात करता है, तथा एक नरक को भोगता हुआ सारी स्थिति की विकृतावस्था पर स्वय ही पीडित होता है।

जब मनुष्य के जीवन के गिने चुने क्षण उसके पास हैं, तो वह केवल श्रेष्ठ कार्य को ही क्यों नही करता ? वह अपने कार्य को श्रेष्ठतम पद्धति से क्यों नही करता है ? वह अपना काम स्वयं करके अपने आत्म-विश्वास के प्रकाश से वातावरण मे नवीन चेतना का सचार क्यों नही करता है। मृत्यु की घड़ी तो टल नही सकती ? वह नियत समय पर

आत्मा के

[illegible]
[illegible] करें। [illegible] का [illegible] करें तथा जियो
[illegible], [illegible] अनिवार्य [illegible] कार्य करके दिखाएँ, [illegible]
[illegible] का [illegible] करके जीवन को सार्थक बनाएँ। श्रुति
कहती है '[illegible] जाग्रत प्राप्य [illegible]', [illegible] धारा [illegible]
[illegible] — उठो जागो और श्रेष्ठ पुरुषों का संग करो,
[illegible] और उनसे ज्ञान प्राप्त करो। [illegible] छुरे
की धार के समान है जो तुम को [illegible] को [illegible] रहा है।
[illegible] हुआ [illegible] लौट कर नहीं आता, इसलिए जितना जो कुछ
भी उपलब्ध है उसे सत्य कार्यों में, सत्पुरुषों की संगति में और इष्ट की
उपासना में व्यतीत करो।

महान कौन है ?

बड़ा वह है जो सबसे पहले उठे तथा सबसे अधिक काम करे। जो सबसे कम काम करता है, देर से उठता है उसे कैसे बड़ा कहा जा सकता है ? जो अपने ऊपर कोई जिम्मेदारी ही लेना नहीं चाहता, जो सदैव काम को टालता रहता है, जो सदैव आलस्य का शिकार होकर अपना समय व्यर्थ नष्ट किया करता है उसमें बड़ा नहीं कहा जा सकता। अच्छा खाना, अच्छा पहनना एवं परनिन्दा से भरी गप्पें ठोकते रहना कभी भी बड़प्पन की निशानी नहीं हो सकता। केवल दूसरों को दोष देना, दूसरों के दोष निकालना तथा स्वयं कुछ भी ठोस काम न करना, कभी भी भी बड़प्पन का चिन्ह नहीं हो सकता। जब आप जानते हैं कि अमुक तरह से जीना उत्तम है तो आप वैसी ही जीवन पद्धति क्यों नहीं अपनाते हैं ? क्यों लोगों के कहने में आकर अपना जन्म अकारथ नष्ट करने पर तुले हो।

यदि आप जीवन जीने की कला से परिचित हो जाएँ तो फिर कोई कारण नहीं कि आपका कार्य पिछड़ा रहे, या आपको भर्त्सना का शिकार होना पड़े। सच तो यह है कि मानव अन्यान्य विद्याओं की शाखाओं के

लम बनाने का प्रयत्न करते हैं, भी यही रह जाता है और इसे भोगने हो संगी साथी चिता पर चढा देते हैं। यह है उस देह की अन्तिम परिणति जो किसी दिन पूरे परिवार की खुशी का कारण बना था। जिसके आगमन पर थाली बजी थी, बतासे बटे थे, देवी देवताओं की मिन्नतें की गई थी तथा कथा कराई गई थी, ब्रह्म भोज कराया गया था, आखिर इस देह मे ऐसा वह कौन सा तत्व है जो मनुष्य को ज्योतिपुरुष बनाता है, वह कौन सी अनोखी वस्तु है जो मनुष्य को मनुष्य कहलाने मे योग देती है। निष्प्राण देह की तो कोई कीमत सचमुच ही नहीं है। है। प्राण का स्तम्भय, मस्त एव व्यस्त रखने का सामान ही तो प्राणायाम है। जब तक मनुष्य मन, वचन, कर्म से शुद्ध नही रहता तब तक प्राण जाग्रत नही होता, और निष्प्राण व्यक्ति जीते जी भी मुर्दे के समान है।

मनुष्य कब तक एक दूसरे को झासा देता रहेगा। एक न एक दिन तो पोल खुलेगी ही। अतएव आवश्यकता इस बात की है कि अभी से पोल से पिंड छुडाया जाए। ऐसे आचरण को गले ही मत लगाओ जो पाखड की कोटि मे आता हैं। अपने आप को सजा कर कब तक कौआ हंस को चाल चलता रहेगा ? अपनी स्थिति को हर आदमी जितनी अच्छी तरह से जानता है उतना कोई अन्य नही जानता। लेकिन कितना आश्चर्य है कि मनुष्य जान बूझ कर भी सही स्थिति को सामने नहीं रखता। हर बार नित नवीन चर्चा करता है, नित नवीन बात करता है, तथा एक नरक को भोगता हुआ सारी स्थिति की विकृतावस्था पर स्वय ही पीडित होता है।

जब मनुष्य के जीवन के गिने चुने क्षण उसमे केवल श्रेष्ठ कार्य को ही क्यो नही करता ? वह अपने पद्धति से क्यो नही करता है ? वह अपना काम स्वयं विश्वास के प्रकाश से वातावरण मे नवीन चेतना का करता है। मृत्यु की घडी तो टल नहीं सकती ? वह

तरह के लोग हैं और आपको सभी से काम लेना है—सभी की सेवा करना है—आप क्यों किसी के दोष-दर्शन में डूबते हैं—आप तो तुलसी के इस दोहे को जीवन का प्रकाश स्तम्भ बना लीजिए :—

"तुलसी या संसार में भांति भांति के लोग
सबसे हिल मिल चाहिए नदी नाव संयोग।

दूसरी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि आप अपने आप को नाम रूप, गुण आदि का निर्देश मात्र मत समझिए। आप अपने आप को सच्चिदानन्द परमात्मस्वरूप आनन्दकन्द आत्मा ही मानिए तथा कहके सुख दुःख मान सम्मान से आप विचलित मत होइए—आप थोड़ा ऊंचा उठिए—इन समस्त सकीर्ण देहगत मनोविकारों से तथा बार बार शंकराचार्य जी के शब्दों में यह शब्द-ध्वनि कीजिए —

'प्रातः स्मरामि हृदि स्फुरद आत्म तत्त्वम्
सुख चित परम हंस गति तुरीयम्
यत्स्वप्न जागर सुषुप्ति मवति नित्यम
तद् ब्रह्म महं निष्कलम न च भूतसंघ।'

———

देर है अन्धेर नहीं

जिस काम का जब योग आता है तब वह प्राप्त होकर ही रहता है, उसके पहले चाहे जितना प्रयत्न करो कोई [illegible] भी नहीं, किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि हम प्रयत्न को बिल्कुल [illegible] छोड़ दें प्रयत्न तो निरन्तर करते ही रहना है—देर है [illegible] नहीं। परिश्रम कभी व्यर्थ नहीं जाता। सच्चाई ईमानदारी की [illegible] गहरी [illegible] जाती है। विशाल भवन के निर्माण में [illegible] नींव भी [illegible] खोदना होती है। जिसमें समय भी लगता है भविष्य की शुभ आशा [illegible] विशाल की मस्तमदी आशा भी मनुष्य को कितना [illegible] कर [illegible] है यह देखकर आश्चर्य होता है। यदि मनुष्य इसी गति से काम [illegible] है तो उसका [illegible] तो निश्चित है देर बेशक है [illegible] अन्धेर [illegible]

संभावना ही न रहे। हर व्यक्ति के समक्ष हर समय अपने मन की बात रखने से होता ही क्या है? क्या कभी पत्थर पर भी फसलें उगी हैं।

व्यर्थ की शिकायतों मे रक्खा ही क्या है। मनुष्य को औरों से जितनी शिकायतें होती है यदि वह अपने आप के प्रति उससे आधी शिकायतों पर गौर करने लगे तो बेड़ा पार ही समझिये। स्वय तो हमें मूल्यांकन की आदत है ही नही किन्तु औरो के द्वारा किया हुआ सही मूल्यांकन भी हम पसन्द नही करते। हम तो इसी से सतुष्ट हैं कि कोई हमारी प्रशसा करता रहे, कोई हमे सृष्टि का महानतम प्राणी कह कर हम मे उन समस्त गुणो का आरोप करता रहे जो वास्तव मे हम मे है ही न ी। यह कैसी विडम्बना है। लोगों को दिखाने भर के लिए हम बड़े त्यागी, देशभक्त और कर्मठ बनते है किन्तु वास्तव मे हम कैसे है, यह तो हमारे सिवाय बहुत कम दूसरे लोग जान पाते हैं। तो आवश्यकता इस बात की है कि हम सच्चे और पक्के हो, तथा हर क्षेत्र मे हमारा कार्य सर्वश्रेष्ठ हो। यह कोई ऐसी बात नही है जिसे केवल आदर्शवाद कह कर टाली जा सके। आखिर आदर्शवाद है ही क्या ? यदि हम हर बात को सैद्धांतिक एव कठिन आदर्शवादी कह कर टालते रहे तो एक दिन ऐसा आ जायेगा कि हम कही के नही रहेंगे'

आज चारो तरफ कुछ ऐसा वातावरण व्याप्त है कि चिराग लेकर ढूंढने पर भी ईमानदार व्यक्ति नही मिल पाते। विशेषकर पंचायतों, सहकारी समितियो एव शासकीय कर्मचारियो मे तो नियमो का पालन जैसे अपवाद ही होता जा रहा है। अपने मतलब के लिए झूठ बोलना एक साधारण बात हो गई। अमृत का आदमी आज इतना कायर होता जा रहा है कि वह स्पष्ट बात कह भी नही पाता। इस स्थिति मे परिवर्तन लाना आपका कार्य है। आप अपने आप से ही प्रारम्भ कीजिए तथा जीवन के आदर्शवाद को व्यवहारिक बनाकर दिखाइये। अपनी बात को तोल कर तथा जोर से कहिए—फिर संसार अधिक समय तक आपकी उपेक्षा नही कर पाएगा।

———

प्रेमा पी आसार

ही उलझनें पैदा हो जाती है।

आप दिन रात भौतिक सुखों के पीछे भागते रहते हैं—वे सब के सब अस्थाई हैं—क्षण भंगुर हैं—आप का यह शरीर भी समय आने पर सर्वथा बेकार, अशक्त एवं अनुपयोगी होकर जीने वाला बन सकता है। तो आप शाश्वत सुखों की आराधना में जीवन को क्यों नहीं लगाते हैं? भौतिक शक्तियों से सहस्रों गुना अधिक शक्ति आध्यात्मिक शक्तियों में होती है—अतएव जीवन में उन्हें ही प्राप्त करना श्रेयस्कर है। श्रद्धा, विराग, साहस, धैर्य, सहिष्णुता, प्रेम, शान्ति, सज्जनता, उदारता, ज्ञान, कृतज्ञता, उत्साह, स्थिरता, महत्वकांक्षा, कर्तव्यनिष्ठा, ईश्वर भक्ति, देश भक्ति, शुद्धता, आदर्शवादिता, समृद्धि, आनन्द एव मस्ती तथा मोक्ष की कामना करना श्रेयस्कर है। हमारा यह स्वभाव ही हो जाना चाहिए कि हम सदैव अच्छाई की आराधना करें, अच्छाई का ही स्वागत करें. बुराई या निन्दा के नर्क में किसी के द्वारा ठेले जाने पर भी न पड़ें, किसी की प्रशंसा करना हो तो आगे बढ़ कर करें। इसमें किसी भी तरह से कंजूसी नहीं करें। वीरता ही पुरुषार्थ का चिन्ह है।

मन को जाग्रत करके इतना नियन्त्रित करो कि उसमें रचनात्मक एवं विधायक विचार ही जन्म लें। सृजनात्मक शुद्ध विचारो का अतिथि की तरह स्वागत करो, उन्हे जीवन की भूमि पर फलने फूलने दो। बुरे विचारो के लिए मन के कपाटों को सदा बन्द रखो। मंद बुद्धि के पर्दे से जीवन में अंधकार ही भरा रहता है। चमत्कार एवं प्रकाश के लिए आवश्यक है कि सद् विचारो की खेती करो। सेवा का क्षेत्र तो मोक्ष का ही द्वार है। कठिन परिश्रम एव ठोस कार्यक्रम का संचालन ही जीवन का सदुपयोग है। धारा के प्रवाह को रोक कर बांध बनाना है, धारा में बहना नहीं है। अंधकार के भावो को, असत्य के भावो को, हमें जड से ही मिटा देना है। भेड़िया धसान मे मत भागो। भारत माता की प्रति- पर अपने हृदय का रक्त चढ़ा कर दीन दुखियों के कष्ट कटकों का दू करो, तथा सारे विश्व मे नवीन प्रकाश भर कर भारत का सितार

जीवन का पाथेय प्रेम

आपने कार्य के प्रति अपने मानस में अनन्त प्रेम की धार को बहने दीजिए तथा नित्य नवीन विधि से कार्य करने का आनन्द लीजिए। सच पूछा जाए तो संसार में आनन्द का खजाना केवल अपने कार्य को भगवान की पूजा या पवित्र समझ के करते रहने में है। इधर उधर व्यर्थ भटकने से होता ही क्या है, द्वेष से मनुष्य अपने आप का ही तो अहित करता है, किन्तु प्रेम से न केवल अपना अपितु सभी संगी साथियों का भी भला करता है। प्रेम उभयपक्षी है यह जीवन में अमृत की धाराओं प्रवाहित करने वाला महामंत्र है। इसकी सहायता से आप कठिन से कठिन कार्य कर सकते हैं। असम्भव एवं विकट समस्याओं का निदान आप चिन्तन पर कर सकते हैं। सृष्टि के विधान को जरा बारीकी से देखिए तो सही। आप यह पाएंगे कि संसार की समस्त गतिविधियाँ एक मात्र प्रेम से ही संचालित हो रही है। सृष्टि का निर्माण ही इसी के आधार पर हुआ है। प्रेम के बिना जीवन नर्क है, नीरस है, खोखला है। भयंकर श्मशान सा है, किन्तु प्रेम पूर्ण जीवन नन्दन कानन है। संजीवनी सुधा है तथा अमरता का स्रोत है। चहकते हुए पक्षियों [illegible] इसलिये वे क्या गा रहे हैं? ये मेघमालाएँ किस की खोज में व्याकुल होकर भटक रही हैं? ये झंझा एवं चक्रवात क्यों घूम घूम कर नाच रही हैं। समुद्र में ज्वार भाटा क्यों चढ़ता उतरता है। चन्द्रमा की [illegible] पूर्णिमा को क्यों खिलती है? मधु ऋतु में मधुप क्यों पागल हो उठते हैं। एक प्रेम के सितार की धुन पर सारा विश्व नृत्य करता है। आपके विरुद्ध सारा संसार ही क्यों न हो आप पर मुसीबतों के पहाड़ क्यों न टूटें, किन्तु आपके हृदय में यदि मानवता का शुद्ध प्रेम है, तो आपका कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता। आप लोगों के *अपराध क्षमा कीजिए [illegible]* फिर उनमें सुधार हो सकता है। उनमें अच्छाइयों का उद्गम हो गये तथा जो आज घृणा तथा उपेक्षा के पात्र हैं वे ही कल देवताओं जैसे पवित्र बन सकें।

'कामी ही नारि पियारी, जिमि लोभी हो प्रिय दाम
तिमि रघुनाथ निरंतर करहुँ हृदय में ध्यान।'

ये सर्वोत्तम उपमायें इतनी अधिक महत्त्वपूर्ण हैं, कि इनसे बढ़ कर अन्य कोई उपमा हो ही नहीं सकती। कवि को लाख मना करो वह तो बार बार स्त्री की ओर ही देखेगा। कहते हैं 'कामातुराणाम् भयं न लज्जा'—काम में पड़े हुए मनुष्य को न ही डर लगता है, न लज्जा ही आती है, वह तो श्वानवत् डंडा खाकर भी हड्डी के चूसने की आदत नहीं छोड़ सकता। इसी लिये अर्जुन को कृष्ण ने बहुत ही जोर देकर कहा कि काम से ही क्रोध उत्पन्न होता है और रजोगुण से उत्पन्न ये काम व क्रोध ही मनुष्य से पाप कराते हैं जिन्हें वह विवेक बुद्धि से स्वप्न में भी नहीं करना चाहेगा। मनुष्य का कैसा घिनौना स्वभाव है कि वह अपने ही माल में तृप्त नहीं होता। गैरों की हंडी चखने को जीभ लपलपाने लगता है, पराई थाली में सदैव घी अधिक दिखता है, कैसा भयंकर भ्रम है यह? कैसी विडम्बना भरी मृग मरीचिका है यह? जिसे हम सुख समझकर दिन रात पाने की कोशिश करते हैं, वास्तव में यह सुख नहीं होता, दुःख का ही उद्गम कारण बनता है। जिस वस्तु को एक बार देख लिया उसकी ओर बार बार देखने की इच्छा क्या होती है। अपने से छोटों की रक्षा करना अपना ही तो कर्त्तव्य है न कि लोलुपसिद्ध की दृष्टि से उस ओर देखना। तुलसी दास जी ने भगवान राम के श्री मुख से यह कहलाया है :—'अनुज वधु भगिनी सुत नारी सुन सठ ये कन्या समारी, इन्हें कुदृष्टि बिलोके जो ही, तिन्हें हते कछु पाप न होई, फिर भी हम देखते हैं, कि संयुक्त परिवारों के विघटन का एक प्रमुख कारण यह उछृंखल काम-वासना है जो मर्यादा को छिन्न-भिन्न स्वर्ग से घर को देखते देखते नर्क बना देती है। इस भयंकर नागिन से हर एक प्रबुद्ध नागरिक को सदैव सतर्क रहना चाहिए ऐसा नहीं हो कि आपको ये अपने स्नेह का शिकार बना कर फांस ले।

[illegible]

[illegible] जड़ में चेतन का अनुभव करने का मतलब है कि [illegible] हर वस्तु में चेतना का अनुभव किया जाए तथा आनन्द की उठती हुई लहरों का स्पर्श किया जाए। दूसरों के हित में लगे रहने का मतलब है अपने दुःख व दर्दों को भूल जाना। दूसरों के कष्टों को अपना कष्ट समझने का मतलब है अपने व्यक्तित्व को सामाजिकता प्रदान करना। क्या आप सदा सर्वदा केवल अपनी ही चिन्ताओं में डूबे रहेंगे। क्या आप केवल अपने ही तन मन की पीड़ा में डूब कर इतने अपंग हो जाएंगे कि भविष्य में चाहते हुए भी आप कुछ परमार्थ न कर सकें।

जड़ता को त्यागिए और न केवल जड़ पदार्थों में अपितु चेतन प्राणियों में भी अमरत्व का दर्शन कीजिए। मुस्काइये फूलों की तरह, और खिल जाइये कलियों की तरह, मस्ती में मदमस्त भ्रमरों की तरह झूमिए तथा अपने आप को भुला दीजिए मानवता की निस्वार्थ सेवा में। भूल जाइए लोभ एवं वासना के काले प्रलोभनों को। इन भयंकर काल-सर्पों से पिंड छुड़ाने वाला ही शाश्वत सौन्दर्य तथा अमरता प्राप्त करता है। अपने मन में सदैव ऐसी कल्पना कीजिए कि आप स्वर्ग लोक में रह रहे हैं—स्वर्ग में देवताओं की तरह ही आप अपने आप को ढालिए तथा भूल कर भी किसी ऐसे कार्य में हाथ मत डालिये जिसमें आप को किसी भी प्रकार का अपयश या कलंक मिलने की संभावना हो।

सदैव उत्तमोत्तम कार्यों की खोज में रहिये तथा अपने सारे पुरुषार्थ को परोपकार में लगा दीजिए। अपने पुण्यों के भंडार को आप निरंतर भरते रहिये तथा उन कार्यों से कोसों दूर रहिए जिन्हें आपकी अंतरात्मा उचित नहीं समझती तथा जिन्हें आप केवल मनोरंजक मात्र के लिए अपनाना चाहते हैं। देवताओं को भी स्वर्ग का सुख सीमित अवधि के लिए ही मिलता है। 'क्षीणे पुण्ये मृत्यु लोके विशन्ति' पुण्य क्षीण होने पर उन्हें भी वापस मृत्यु लोक में ही जाना पड़ता है। अतएव अपना स्वभाव ही ऐसा बनाइये कि इस देह से पुण्य ही हो—पाप का नाम भी मन्द्या न लगे। जिस प्रकार वे पशु पक्षी जो जीभ से जल नहीं पीते मांस भी नहीं खाते हैं—खा ही नहीं सकते वैसे ही आप ही निरामिष जीव बनिये। केवल आचार से या केवल विचार से ही अहिंसक रहने से तो कोई काम नहीं चलता है मनुष्य को यह चाहिए कि वह आचार एवं विचार दोनों में निरीमिष बने—किसी को भी न सताइए, किसी से कभी भी अपशब्द न कहे। फिर देखिए आपका प्रभुत्व प्रभाव किस प्रकार जादू की तरह सारे संसार में फैलता है तथा आप के न चाहने पर भी आप पर सुख वैभव, आनन्द एवं समृद्धि की वर्षा होती है। इस दुनिया का नियम ही कुछ ऐसा विचित्र है कि संकट के समय हम किसी को जो भी देते हैं उससे कई गुणा अधिक होकर हमें वह वापिस मिल जाता है। प्रेम सेवा, सद्भावना एवं अहसान तो करो किन्तु उसे कभी प्रकट मत करो बस यही सफलता के मूल मंत्र, सुख और आनन्द के अनादि स्रोत है।

पूजा रहस्य

यदि आप यह चाहते हैं कि आपको कार्य के साथ विश्राम भी मिले। यदि आप चाहते हैं कि आपका सारा काम हाथों हाथ हो जाए तथा यदि आप यह चाहते हैं कि आप एक निश्चित जीविकोपार्जन के अतिरिक्त कुछ समय सेवा का भी ठोस कार्य कर सकें ... कामों की एक सूची बनाइये। हर माह जो काम आपक

सूची पिछले माह की अन्तिम तारीख को बनाली जाए तब। कार्य-योजना को इस प्रकार विभाजित कीजिए कि आपका सारे का सारा महीने भर का कार्य बीस दिन मे ही हो जाए। जब आप महीने भर का काम बीस दिन मे करने की योजना बना लेंगे, तो आप अत्यन्त सतर्कता एवं सावधानी से उन कार्यों को पूरा करने मे लग जाइए। जब तक माह का निर्धारित कार्य पूरा नही होता चैन से मत बैठिये। आप देखेंगे कि कुछ प्रारम्भिक महीनो मे चाहे आपका कार्य पूरा न हो, किन्तु धीरे धीरे आपकी आदत ही पड जाएगी तथा आप न केवल बीस दिन अपितु पन्द्रह दिन मे ही अपने पूरे कार्य को निबटा सकेंगे। आप अपनी शक्ति एव कार्यकुशलता को जाचिये तो सही। यह कितना बडा आश्चर्य है कि जो काम आपने स्वय अपने जीवन-ध्येय के रूप मे चुना है उसे ही समयावधि मे पूरा कर सकने मे आपको कठिनाइयां आती हैं, आखिर इसका कारण क्या है? कारण यह है कि दरअसल आपने कभी मन लगा कर काम किया ही नही। केवल ऊपर ही ऊपर काम करते रहे। ऐसे भी कही काम होता है-मोती निकालने के लिये गोताखोर को गहरे पानी मे ही तो पेठना पड़ता है। अतएव मित्रवर, आप ही क्यो ऊपर ही ऊपर दूर की कोडी खोज लाने का व्यर्थ स्वप्न देखते हैं? ध्यान मे व्यवधान पड़ना ही नही चाहिए। आपने कार्य को पूरा करने, निर्धारित मात्रा मे कार्य सम्पन्न करने की एक लगन लगी रहना चाहिए। अन्तर के समक्ष एक चित्र होना चाहिए पर महीने के कार्य को समयावधि मे संपन्न करने और कार्य को पूर्ण आसक्ति के साथ सम्पादित करने की उत्कट लालसा आपमे होनी चाहिए। आप देखेंगे कि धीरे धीरे आप अपने काम मे अत्यन्त प्रवीण, प्रसिद्ध एव श्रेष्ठतम होते जा रहे हैं, जब आप अपना सारा निर्दिष्ट कार्य अत्यन्त कुशलता से माह के दो तिहाई समय मे ही कर डालेंगे तो शेष समय मे आप निश्चिन्त रूप मे लोग समाज सेवा, धर्म-प्रचार या अन्य परोपकार के कार्य मे लग सकेंगे। दरअसल जब तक रोजी के कार्य को ठीक ढंग से न

पड़ा पाया तभी तो वह जीवन के अन्य क्षेत्रों में भी असफल होता है सफलता तो केवल पुरुषार्थ का वरण करती है जो न केवल अपने का को अत्यन्त श्रेष्ठता से करता है अपितु औरों का भी कार्य श्रेष्ठता करने की क्षमता रखता है । आज हमारे देश में एक भयंकर भ्रम फै हुआ है कि लोग अपना काम तो मन लगाकर करते नहीं हैं तथा ध पूजापाठ जप तथा हवन माला आदि में लगे रहते हैं। ये कार्य भी पवि एवं उपयोगी हैं। इनकी श्रेष्ठता में किसी को संदेह नहीं है किन्तु सच यह है कि ये सब कार्य भी अपनी जीविका या अपने कार्य में योग दे के लिए ही हैं। इन सब धार्मिक अनुष्ठानों एवं कर्मकांडों का एकमा लक्ष्य यही है कि इन से आपको व्यक्तित्व विकसित हो सके, ये आपकी कार्यक्षमता में वृद्धि करें, आप सत्यनिष्ठा एवं ध्येयनिष्ठा को अपना सा तथा आप अपने कार्य को करने में इतने सिद्धहस्त हो जाए कि को आपकी ओर उंगली न उठा सके तथा जहां भी चर्चा चले यही कहा जा कि आपके बिना अमुक काम हो ही नहीं सकता। अपने अस्तित्व की अपरिहार्यता सिद्ध कीजिए अपने काम से । यह नहीं कि 'नौ सौ चूहे खा कर बिल्ली चली हज करने' वाली कहावत चरितार्थ करें। याद रखि कार्य के पतन से न कोई बचा है न बच सकता है। ईश्वर-भक्ति ए शरणागति केवल आत्म दर्शन के लिए ही है जिससे आप अपने अवगुण एवं दुर्गुणों से स्वयं परिचित हो सकें तथा स्वयं ही उनका दमन कर की शक्ति प्राप्त कर सकें। आपके अवगुण दुर्गुण दूसरों पर उजागर

सकें।